हसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानम्

प्रवचन-क्रम

1. मेडिसिन और मेडिटेशन...2
2. ध्यानः एक वैज्ञानिक दृष्टि...19
3. ध्यानः अंतस अनुभूति...32
4. मन के पार..44
5. ध्यान और रेचन...59

1

हसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानम् पहला प्रवचन

मेडिसिन और मेडिटेशन

मेरे प्रिय आत्मन्!
मनुष्य एक बीमारी है। बीमारियां तो मनुष्य पर आती हैं, लेकिन मनुष्य खुद भी एक बीमारी है। मैन इ.ज ए डिस-ई.ज। यही उसकी तकलीफ है, यही उसकी खूबी भी। यही उसका सौभाग्य है, यही उसका दुर्भाग्य भी। जिस अर्थों में मनुष्य एक परेशानी, एक चिंता, एक तनाव, एक बीमारी, एक रोग है, उस अर्थों में पृथ्वी पर कोई दूसरा पशु नहीं है। वही रोग मनुष्य को सारा विकास दिया है। क्योंकि रोग का मतलब यह है कि हम जहां हैं, वहीं राजी नहीं हो सकते। हम जो हैं, वही होने से राजी नहीं हो सकते। वह रोग ही मनुष्य की गति बना, रेस्टलेसनेस बना। लेकिन वही उसका दुर्भाग्य भी है, क्योंकि वह बेचैन है, परेशान है, अशांत है, दुखी है, पीड़ित है।
मनुष्य को छोड़ कर और कोई पशु पागल होने में समर्थ नहीं है। जब तक कि मनुष्य किसी पशु को पागल न करना चाहे, तब तक कोई पशु अपने से पागल नहीं होता, न्यूरोटिक नहीं होता। जंगल में पशु पागल नहीं होते, सर्कस में पागल हो जाते हैं। जंगल में पशु विक्षिप्त नहीं होते, अजायबघर में, "जू" में विक्षिप्त हो जाते हैं! कोई पशु आत्महत्या नहीं करता, स्युसाइड नहीं करता, सिर्फ आदमी अकेला आत्महत्या कर सकता है।
यह जो मनुष्य नाम का रोग है, इस रोग को सोचने, समझने, हल करने के दो उपाय किए गए हैं। एक मेडिसिन है उपाय--औषधि। और दूसरा ध्यान है उपाय-- मेडिटेशन। ये दोनों एक ही रोग का इलाज हैं।
इसे थोड़ा ऐसा समझना अच्छा होगा कि औषधिशास्त्र, मेडिसिन मनुष्य के रोग को एटामिक, आणविक दृष्टि से देखता है। औषधिशास्त्र मनुष्य के एक-एक रोग को अलग-अलग व्यवहार करता है। औषधिशास्त्र एक-एक रोग को आणविक मानता है। ध्यान मनुष्य को "ऐ.ज ए होल" बीमार मानता है, एक-एक रोग को नहीं। ध्यान मनुष्य के व्यक्तित्व को बीमार मानता है। औषधिशास्त्र मनुष्य के ऊपर बीमारियां आती हैं, विजातीय हैं, फॉरेन हैं, ऐसा मानता है।
लेकिन धीरे-धीरे यह दूरी कम हुई है और धीरे-धीरे मेडिसिन ने भी कहना शुरू किया है--डोंट ट्रीट दि डि.जी.ज, ट्रीट दि पेशेंट। मत करो इलाज बीमारी का; बीमार का इलाज करो। यह बड़ी कीमती बात है। क्योंकि इसका मतलब यह है कि बीमारी भी बीमार के जीने का एक ढंग है, ए वे ऑफ लाइफ। हर आदमी एक सा बीमार नहीं हो सकता। बीमारियां भी हमारी इंडिविजुअलिटी रखती हैं, व्यक्तित्व रखती हैं। ऐसा नहीं है कि मैं क्षय रोग से, टी.बी. से बीमार पडूं और आप भी पड़ें, तो हम दोनों एक ही तरह के बीमार होंगे। हमारी टी.बी. भी दो तरह की होंगी, क्योंकि हम दो व्यक्ति हैं। और हो सकता है कि जो इलाज मेरी टी.बी. को ठीक कर सके वह आपकी टी.बी. को ठीक न कर सके। इसलिए बहुत गहरे में बीमारी नहीं है, बहुत गहरे में बीमार है।
औषधिशास्त्र, मेडिसिन--आदमी की ऊपर से बीमारियों को पकड़ता है। मेडिटेशन, ध्यान का शास्त्र--आदमी को गहराई से पकड़ता है। इसे ऐसा कह सकते हैं कि औषधि मनुष्य को ऊपर से स्वस्थ करने की चेष्टा करती है। ध्यान मनुष्य को भीतर से स्वस्थ करने की चेष्टा करता है। न तो ध्यान पूर्ण हो सकता है औषधिशास्त्र के बिना और न औषधिशास्त्र पूर्ण हो सकता है ध्यान के बिना। असल में आदमी चूंकि दोनों है--भाषा ठीक नहीं है यह कहना कि आदमी दोनों है, क्योंकि इसमें कुछ बुनियादी भूल हो जाती है।
मनुष्य हजारों वर्षों से इस तरह सोचता रहा है कि आदमी का शरीर अलग है
और आदमी की आत्मा अलग है। इस चिंतन के दो खतरनाक परिणाम हुए। एक परिणाम तो यह हुआ कि कुछ लोगों ने आत्मा को ही मनुष्य मान लिया, शरीर की उपेक्षा कर दी। जिन कौमों ने ऐसा किया उन्होंने ध्यान का तो विकास किया, लेकिन औषधि का विकास नहीं किया। वे औषधि का विज्ञान न बना सके। शरीर की उपेक्षा कर दी गई। ठीक इसके विपरीत कुछ कौमों ने आदमी कोशरीर ही मान लिया और उसकी आत्मा को इनकार कर दिया। उन्होंने मेडिसिन और औषधि का तो बहुत विकास किया, लेकिन

ध्यान के संबंध में उनकी कोई गति न हो पाई। जब कि आदमी दोनों है एक साथ। कह रहा हूं कि भाषा में थोड़ी भूल हो रही है, जब हम कहते हैं--दोनों है एक साथ, तो ऐसा भ्रम पैदा होता है कि दो चीजें हैं जुड़ी हुई।
नहीं, असल में आदमी का शरीर और आदमी की आत्मा एक ही चीज के दो छोर हैं। अगर ठीक से कहें तो हम यह नहीं कह सकते कि बॉडी धन सोल, ऐसा आदमी है। ऐसा नहीं है। आदमी साइकोसोमेटिक है, या सोमेटोसाइकिक है। आदमी मनस-शरीर है, या शरीर-मनस है।
मेरी दृष्टि में, आत्मा का जो हिस्सा हमारी इंद्रियों की पकड़ में आ जाता है उसका नाम शरीर है और आत्मा का जो हिस्सा हमारी इंद्रियों की पकड़ के बाहर रह जाता है उसका नाम आत्मा है। अदृश्य शरीर का नाम आत्मा है, दृश्य आत्मा का नाम शरीर है। ये दो चीजें नहीं हैं, ये दो अस्तित्व नहीं हैं, ये एक ही अस्तित्व की दो विभिन्न तरंग-अवस्थाएं हैं।
असल में दो, द्वैत, डुआलिटी की धारणा ने मनुष्य-जाति को बड़ी हानि पहुंचाई। सदा हम दो की भाषा में सोचते रहे और मुसीबत हुई। पहले हम सोचते थेः मैटर और एनर्जी। अब हम ऐसा नहीं सोचते। अब हम यह नहीं कहते कि पदार्थ अलग और शक्ति अलग। अब हम कहते हैं, मैटर इ.ज एनर्जी। अब हम कहते हैं, पदार्थ ही शक्ति है। सच तो यह है कि यह पुरानी भाषा हमें दिक्कत दे रही है। पदार्थ ही शक्ति है, ऐसा कहना भी ठीक नहीं है। कुछ है, एक्स, जो एक छोर पर पदार्थ दिखाई पड़ता है और दूसरे छोर पर एनर्जी, शक्ति दिखाई पड़ता है। ये दो नहीं हैं। ये एक ही ऊर्जा, एक ही अस्तित्व के दो छोर हैं।
ठीक वैसे ही आदमी का शरीर और उसकी आत्मा एक ही अस्तित्व के दो छोर हैं। बीमारी दोनों छोरों में किसी भी छोर से शुरू हो सकती है। शरीर के छोर से शुरू हो सकती है और आत्मा के छोर तक पहुंच सकती है। असल में जो भी शरीर पर घटित होता है, उसके वाइब्रेशंस, उसकी तरंगें आत्मा तक सुनी जाती हैं। इसलिए कई बार यह होता है कि शरीर से बीमारी ठीक हो जाती है और आदमी फिर
भी बीमार बना रह जाता है। शरीर से बीमारी विदा हो जाती है और डाक्टर कहता है कि कोई बीमारी नहीं है और आदमी फिर भी बीमार रह जाता है और बीमार मानने को राजी नहीं होता कि मैं बीमार नहीं हूं। चिकित्सक के जांच के सारे उपाय कह देते हैं कि अब सब ठीक है, लेकिन बीमार कहे चला जाता है कि सब ठीक नहीं है। इस तरह के बीमारों से डाक्टर बहुत परेशान रहते हैं, क्योंकि उनके पास जो भी जांच के साधन हैं वे कह देते हैं कि कोई बीमारी नहीं है।
लेकिन कोई बीमारी न होने का मतलब स्वस्थ होना नहीं है। स्वास्थ्य की अपनी पाजिटिविटी है। कोई बीमारी का न होना सिर्फ निगेटिव है। हम कह सकते हैं कि कोई कांटा नहीं है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि फूल है। कांटा नहीं है, इससे सिर्फ इतना ही पता चलता है कि कांटा नहीं है। लेकिन फूल का होना कुछ बात और है।
लेकिन चिकित्सा-शास्त्र अब तक, स्वास्थ्य क्या है, इस दिशा में कुछ भी काम नहीं कर पाया है। उसका सारा काम इस दिशा में है कि बीमारी क्या है। तो अगर चिकित्सा-शास्त्र से हम पूछें--बीमारी क्या है? तो वह परिभाषा करता है, डेफिनीशन करता है। उससे पूछें कि स्वास्थ्य क्या है? तो वह धोखा देता है। वह कहता है, जब कोई बीमारी नहीं होती तो जोशेष रह जाता है वह स्वास्थ्य है। यह धोखा हुआ, यह परिभाषा नहीं हुई। क्योंकि बीमारी से स्वास्थ्य की परिभाषा कैसे की जा सकती है? यह तो वैसे ही हुआ जैसे कांटों से कोई फूल की परिभाषा करे। यह तो वैसे ही हुआ जैसे कोई मृत्यु से जीवन की परिभाषा करे। यह तो वैसे ही हुआ जैसे कोई अंधेरे से प्रकाश की परिभाषा करे। यह तो वैसे ही हुआ जैसे कोई स्त्री से पुरुष की परिभाषा करे या पुरुष से स्त्री की परिभाषा करे।
नहीं, चिकित्सा-शास्त्र अब तक नहीं कह पाया--व्हाट इ.ज हेल्थ? स्वास्थ्य क्या है? वह इतना ही कह सकता है--व्हाट इ.ज डि.जी.ज? बीमारी क्या है? स्वभावतः, उसका कारण है। उसका कारण यही है कि चिकित्सा-शास्त्र बाहर से पकड़ता है। बाहर से बीमारी ही पकड़ में आती है। वह जो भीतर है मनुष्य का आंतरिक अस्तित्व, वह जो इनरमोस्ट बीइंग, वह जो भीतरी आत्मा, स्वास्थ्य सदा वहीं से पकड़ा जा सकता है।

इसलिए हिंदी का "स्वास्थ्य" शब्द बहुत अदभुत है। अंग्रेजी का "हेल्थ" शब्द "स्वास्थ्य" का पर्यायवाची नहीं है। हेल्थ तो हीलिंग से बना है, उसमें बीमारी जुड़ी है। हेल्थ का तो मतलब है हील्ड--जो बीमारी से छूट गया। स्वास्थ्य का मतलब यह नहीं है कि जो बीमारी से छूट गया। स्वास्थ्य का मतलब है जो स्वयं में स्थित हो गया--दैट वन हू हैज रीच्ड टु हिमसेल्फ, वह जो अपने भीतर गहरे से गहरे में पहुंच गया। स्वस्थ का मतलब है, स्वयं में जो खड़ा हो गया। इसलिए स्वास्थ्य का मतलब हेल्थ नहीं है।
असल में दुनिया की किसी भाषा में स्वास्थ्य के मुकाबले कोई शब्द नहीं है। दुनिया की सभी भाषाओं में जोशब्द हैं वे डि.जी.ज या नो-डि.जी.ज के पर्यायवाची हैं। स्वास्थ्य की धारणा ही हमारे मन में बीमार न होने की है। लेकिन बीमार न होना जरूरी तो है स्वस्थ होने के लिए, पर्याप्त नहीं है; इट इ.ज नेसेसरी बट नॉट इनफ--कुछ और भी चाहिए।
वह दूसरे छोर पर वह जो हमारे भीतर हमारा अस्तित्व है, वहां से कुछ हो सकता है। बीमारी बाहर से शुरू हो, तो भी भीतर तक उसकी प्रतिध्वनियां पहुंच जाती हैं। अगर मैं शांत झील में एक पत्थर फेंक दूं, तो जहां पत्थर गिरता है, चोट वहीं पड़ती है, लेकिन तरंगें दूर झील के तटों तक पहुंच जाती हैं, जहां पत्थर कभी नहीं पड़ा।
ठीक जब हमारे शरीर पर कोई घटना घटती है, तो तरंगें आत्मा तक पहुंच जाती हैं। और अगर चिकित्सा-शास्त्र सिर्फ शरीर का इलाज कर रहा है, तो उन तरंगों का क्या होगा जो दूर तट पर पहुंच गईं? अगर हमने पत्थर फेंका है झील में और हम उसी जगह पर केंद्रित हैं जहां पत्थर गिरा और पानी में गड्ढा बना, तो उन तरंगों का क्या होगा जो कि पत्थर से मुक्त हो गईं, जिनका अपना अस्तित्व शुरू हो गया?
जब एक आदमी बीमार पड़ता है तोशरीर की चिकित्सा के बाद भी बीमारी से पैदा हुई तरंगें उसकी आत्मा तक प्रवेश कर जाती हैं। इसलिए अक्सर बीमारी लौटने की जिद्द करती है। बीमारी की लौटने की जिद्द उन तरंगों से पैदा होती है जो उसकी आत्मा के अस्तित्व तक गूंज जाती हैं और जिनका चिकित्सा- शास्त्र के पास अब तक कोई उपाय नहीं है। इसलिए चिकित्सा-शास्त्र बिना ध्यान के सदा ही अधूरा रहेगा। हम बीमारी ठीक कर देंगे, बीमार को ठीक न कर पाएंगे। वैसे डाक्टर के हित में है यह कि बीमार ठीक न हो। बीमारी भर ठीक होती रहे, बीमार लौटता रहे!
दूसरा जो छोर है, वहां से भी बीमारी पैदा हो सकती है। सच तो यह है कि मैंने कहा कि वहां बीमारी है ही, जैसा मनुष्य है। जैसा मनुष्य है, वहां एक टेंशन है ही भीतर। जैसा मैंने कहा कि कोई पशु इस तरह डिस-ईज्ड नहीं है, इस तरह रेस्टलेस नहीं है, इस तरह बेचैन और तनाव में नहीं है। उसका कारण है--कि किसी पशु के मस्तिष्क में बिकमिंग का, होने का कोई ख्याल नहीं है। कुत्ता कुत्ता है। उसे होना नहीं है। आदमी को आदमी होना है, है नहीं। इसलिए हम किसी कुत्ते से यह नहीं कह सकते कि तुम थोड़े कम कुत्ते हो। सब कुत्ते बराबर कुत्ते होते हैं। लेकिन किसी आदमी से संगत रूप से कह सकते हैं कि आप थोड़े कम आदमी हैं।
आदमी पूरा पैदा नहीं होता। आदमी का जन्म अधूरा है। सब जानवर पूरे पैदा होते हैं। आदमी अधूरा पैदा होता है। कुछ काम है जो उसे करना पड़ेगा, तब वह पूरा हो सकता है। वह जो पूरा न होने की स्थिति है, वह उसकी डि.जी.ज है। इसलिए वह चौबीस घंटे परेशान है।
ऐसा नहीं है, आमतौर से हम सोचते हैं कि एक गरीब आदमी परेशान है, क्योंकि गरीबी है। लेकिन हमें पता नहीं है कि अमीर होते ही से परेशानी का तल बदलता है, परेशानी नहीं बदलती। सच तो यह है कि गरीब इतना परेशान कभी होता ही नहीं जितना अमीर परेशान हो जाता है। क्योंकि गरीब को एक तो जस्टीफिकेशन होता है परेशानी का--कि मैं गरीब हूं। अमीर को वह जस्टीफिकेशन भी नहीं रह जाता। अब वह कारण भी नहीं बता सकता कि मैं परेशान क्यों हूं? और जब परेशानी अकारण होती है, तब परेशानी भयंकर हो जाती है। कारण से राहत मिलती है, कंसोलेशन मिलता है, क्योंकि कारण से यह भरोसा होता

है कि कल कारण को अलग भी कर सकेंगे। लेकिन जब कोई बीमारी अकारण खड़ी हो जाती है तब कठिनाई शुरू हो जाती है।
इसलिए गरीब मुल्कों ने बहुत दुख सहे हैं; जिस दिन वे अमीर होंगे उस दिन उनको पता चलेगा कि अमीर मुल्कों के अपने दुख हैं। हालांकि मैं पसंद करूंगा, गरीब के दुख की बजाय अमीर का दुख ही चुनने योग्य है। जब दुख ही चुनना हो तो अमीर का ही चुनना चाहिए। लेकिन तीव्रता बेचैनी की बढ़ जाएगी। इसलिए आज अमेरिका जितना बेचैन और परेशान है, उतना आज पृथ्वी पर कोई भी नहीं है। हालांकि जितनी सुविधा अमेरिका के पास है, उतनी कभी किसी समाज के पास नहीं थी। असल में अमेरिका में पहली दफे डिसइल्यूजनमेंट हुआ, पहली दफे भ्रम टूट गए। सोचते थे कि कारण के कारण हम परेशान हैं। अमेरिका को पहली दफा पता चलना शुरू हुआ है कि कारण नहीं है। परेशानी कारण की वजह से नहीं है, आदमी परेशानी है। वह नई परेशानी खोज लेता है। वह जो उसके भीतर एक अस्तित्व है, वह चौबीस घंटे मांग कर रहा है उसकी जो नहीं है। जो है, वह रोज बेकार हो जाता है। जो मिल जाता है, वह बेकार हो जाता है। जो नहीं है, वह आकर्षित करता है। वह जो नहीं है, उसको पाने की निरंतर चेष्टा है।
नीत्शे ने कहीं कहा है कि आदमी एक सेतु है, स्ट्रेच्ड बिट्वीन टू इंपासिबिलिटीज। दो असंभावनाओं के बीच में फैला हुआ पुल है। निरंतर असंभव के लिए आतुर, पूरे होने के लिए आतुर।
इस पूरे होने की आतुरता से सारे धर्म पैदा हुए। और यह जानना उपयोगी होगा कि एक दिन धर्मगुरु और चिकित्सक पृथ्वी पर एक ही आदमी था। धर्मगुरु ही चिकित्सक था, पुरोहित ही चिकित्सक था। वह जो प्रीस्ट था, वही डाक्टर था। और आश्चर्य न होगा कि कल फिर स्थिति वही हो जाए। थोड़ा सा फर्क होगा। अब जो चिकित्सक होगा वही पुरोहित हो सकता है! अमेरिका में वह घटना घटनी शुरू हो गई है, क्योंकि पहली दफा यह बात अमेरिका में साफ हो गई है कि सवाल सिर्फ शरीर का नहीं है। बल्कि यह भी साफ होना शुरू हो गया है कि अगर शरीर बिल्कुल स्वस्थ हुआ तो मुसीबतें बहुत बढ़ जाएंगी, क्योंकि पहली दफे भीतर के छोर पर जो रोग हैं, उनका बोध शुरू हो जाएगा।
हमारे बोध के भी तो कारण होते हैं। अगर मेरे पैर में कांटा गड़ा होता
है तो मुझे पैर का पता चलता है। जब तक कांटा पैर में न हो, पैर का पता नहीं चलता। और जब पैर में कांटा होता है तो मेरी पूरी आत्मा एरोड हो जाती है, तीर बन जाती है पैर की तरफ। वह सिर्फ पैर को ही देखती है, कुछ और नहीं देखती--स्वाभाविक। लेकिन पैर से कांटा निकल जाए, फिर भी आत्मा कुछ तो देखेगी। भूख कम हो जाए, कपड़े ठीक मिल जाएं, मकान व्यवस्थित हो जाए, जो पत्नी चाहिए वह मिल जाए--हालांकि इससे बड़ा दुख नहीं है दुनिया में। जिनको चाही गई पत्नी मिल जाए, उनके दुख का कोई अंत नहीं है; क्योंकि चाही गई पत्नी न मिले तो कम से कम आशा में एक सुख रहता है; वह भी खो जाता है।
मैंने सुना है एक पागलखाने के संबंध में। एक आदमी गया है एक पागलखाने
को देखने। सुप्रिनटेंडेंट उसे घुमा रहा है। और एक कठघरे में उसने पूछा कि इस आदमी को क्या हो गया है? उस सुप्रिनटेंडेंट ने--वह एक पागल है, अपने सींकचों में बंद, एक तस्वीर को लिए हुए, उसे हृदय से लगा रहा है, कुछ गीत गा रहा है--तो उस सुप्रिनटेंडेंट ने कहा कि इस आदमी को जिस स्त्री से प्रेम था, वह इसे मिल नहीं पाई, यह पागल हो गया है। फिर दूसरे कठघरे में एक दूसरा आदमी सींकचे तोड़ने की कोशिश कर रहा है, छाती पीट रहा है, बाल नोच रहा है। पूछा कि इस आदमी को क्या हो गया है? तो उस सुप्रिनटेंडेंट ने कहा कि इसको वही स्त्री मिल गई, जो उसको नहीं मिल पाई! यह इसलिए पागल हो गया है।
लेकिन जिसको नहीं मिल पाई वह आनंद में था तस्वीर के साथ, इतना फर्क था। जिसको मिल गई वह छाती पीट रहा था और सींकचों से सिर फोड़ रहा था, वह आनंद में नहीं था। धन्यभागी हैं वे प्रेमी, जिनको उनकी प्रेयसियां नहीं मिल पातीं!
असल में जो हमें नहीं मिल पाता उसके लिए हम सदा ही आशा बांध कर जी पाते हैं। मिलते ही आशा टूट जाती है और हम खाली हो जाते हैं। जिस दिन चिकित्सक शरीर से आदमी को छुटकारा दिला देगा, उस दिन चिकित्सक को दूसरा काम पूरा करना ही पड़ेगा। जिस दिन हम आदमी को बीमारी से मुक्त करा देंगे, उस दिन हम

आदमी को पहली दफे आध्यात्मिक बीमारी को पैदा करने की सिचुएशन, स्थिति देंगे। वह पहली दफे भीतर परेशान होगा और पूछना शुरू करेगा कि अब सब ठीक हो गया, लेकिन कुछ भी ठीक नहीं है!
यह बहुत आश्चर्य की बात नहीं है कि हिंदुस्तान के चौबीस तीर्थंकर राजाओं के बेटे हैं; बुद्ध राजा के बेटे हैं; राम, कृष्ण, ये सब शाही परिवारों से आए हैं। इनकी बेचैनी शरीर के तल से समाप्त हो गई है। इनकी बेचैनी भीतर के तल से शुरू हो गई है।
मेडिसिन आदमी को ऊपर से उसके शरीर की व्यवस्था और बीमारी से मुक्त करने की चेष्टा है।
लेकिन ध्यान रहे, आदमी सब बीमारियों से मुक्त होकर भी आदमी होने की बीमारी से मुक्त नहीं होता। वह जो आदमी होने की बीमारी है, वह असंभव की चाह है। वह जो आदमी होने की बीमारी है, वह किसी भी चीज से तृप्त न होना है। वह जो आदमी होने की बीमारी है, वह सदा जो मिल जाए उसे व्यर्थ कर देना है और जो नहीं मिला उसकी सार्थकता में लग जाना है।
वह आदमी होने की बीमारी का इलाज ध्यान है। बीमारियों का इलाज चिकित्सक के पास है, चिकित्सा के पास है, लेकिन बीमारी--वह जो आदमी जिसका नाम है--उस बीमारी का इलाज ध्यान के पास है। और उस दिन चिकित्सा-शास्त्र पूरा हो सकेगा, जिस दिन हम आदमी के भीतरी छोर को भी समझ लें और उसके साथ भी काम शुरू कर दें। क्योंकि मेरी अपनी समझ ऐसी है कि भीतरी छोर पर वह जो बीमार आदमी बैठा हुआ है, वह हजारों तरह की बीमारियां बाहर के छोर पर भी पैदा करता है।
जैसा मैंने कहा--शरीर पर बीमारी पैदा हो, तो उसके वाइब्रेशंस, उसकी तरंगें अंतरात्मा तक पहुंच जाती हैं। अगर अंतरात्मा बीमार हो, तो उसकी तरंगें भी शरीर के छोर तक आती हैं। इसीलिए तो दुनिया में हजारों तरह की चिकित्साएं चलती हैं; हजारों तरह की पैथीज हैं दुनिया में। यह हो नहीं सकता। यह होना नहीं चाहिए। अगर पैथोलॉजी एक साइंस है, तो हजारों तरह की नहीं हो सकतीं। लेकिन हजारों तरह की हो सकती हैं, क्योंकि आदमी की बीमारियां हजारों तरह की हैं। कुछ बीमारियों को एलोपैथी फायदा पहुंचा ही नहीं सकती। जो बीमारियां भीतर से बाहर की तरफ आती हैं, उनके लिए एलोपैथी एकदम बेमानी हो जाती है। जो बीमारियां बाहर से भीतर की तरफ जाती हैं, उनके लिए एलोपैथी बड़ी सार्थक हो जाती है। जो बीमारियां भीतर से बाहर की तरफ आती हैं, वे बीमारियां शारीरिक होती ही नहीं, शरीर पर केवल प्रकट होती हैं। उनके होने का तल सदा ही साइकिक या और गहरे में स्प्रिचुअल होता है; या तो मानसिक होता है या आध्यात्मिक होता है।
अब जिस आदमी को मानसिक बीमारी है, उसका अर्थ यह हुआ कि उसकोशारीरिक चिकित्सा कोई फायदा नहीं पहुंचा सकेगी। शायद नुकसान पहुंचाए। क्योंकि चिकित्सा कुछ करेगी उस आदमी के साथ। और उसका कुछ करना अगर फायदा नहीं पहुंचाता तो नुकसान पहुंचाएगा। सिर्फ वे ही चिकित्साएं नुकसान नहीं पहुंचातीं जो फायदा भी नहीं पहुंचा सकती हैं। जैसे होमियोपैथी कोई नुकसान नहीं पहुंचा सकती, क्योंकि फायदे का भी कोई डर नहीं है। लेकिन होमियोपैथी से फायदा होता है। पहुंचा नहीं सकती, इसका यह मतलब नहीं कि होमियोपैथी से फायदा नहीं होता है। फायदा होता है। फायदा होना दूसरी घटना है, फायदा पहुंचाना बिल्कुल दूसरी घटना है। ये दो चीजें हैं अलग-अलग। फायदा होता है।
फायदा इसलिए होता है कि वह आदमी अगर बीमारी को मनस के तल से पैदा कर रहा है, तो उस बीमारी के लिए फाल्स मेडिसिन की जरूरत है, उसे झूठी औषधि की जरूरत है। उसे सिर्फ भरोसा दिलाने की जरूरत है कि वह ठीक है। वह बीमार नहीं है, सिर्फ बीमार होने के ख्याल में है। उसे भरोसा भर आ जाए। वह राख से भी आ सकता है किसी साधु की, वह गंगा के जल से भी आ सकता है। और अभी तो बहुत प्रयोग चलते हैं, जिसको आप औषधि-आभास, प्लेसिबो कहें, उसके बहुत प्रयोग चलते हैं। अगर दस मरीज एक ही तरह की बीमारी के मरीज हैं, उनमें तीन को एलोपैथी की चिकित्सा दी जाए, तीन को होमियोपैथी की दी जाए, तीन को नेचरोपैथी की दी जाए, बड़े मजे की बात यह है कि सब पैथियां बराबर ठीक करती

हैं और बराबर मारती हैं। अनुपात में कोई बहुत फर्क नहीं पड़ता। तब थोड़ा सोचने जैसा मामला हो जाता है कि बात क्या है?
मेरी दृष्टि में, एलोपैथी अकेली वैज्ञानिक चिकित्सा है। लेकिन चूंकि आदमी अवैज्ञानिक है, इसलिए वैज्ञानिक चिकित्सा अकेला काम नहीं कर सकती है। एलोपैथी अकेली विज्ञान के ढंग से आदमी के शरीर के साथ व्यवहार करती है। लेकिन आदमी चूंकि भीतर से काल्पनिक भी है, प्रोजेक्टिव भी है, प्रक्षेप भी करता है, इसलिए एलोपैथी पूरा काम नहीं कर पाती। सच तो यह है कि जिस मरीज पर एलोपैथी काम नहीं कर पाती, वह मरीज अवैज्ञानिक ढंग से बीमार है।
अवैज्ञानिकढंग से बीमार होने का मतलब क्या है? यह शब्द बड़ा अजीब सा लगेगा! क्योंकि वैज्ञानिक ढंग की चिकित्सा हो सकती है, अवैज्ञानिक ढंग की चिकित्सा हो सकती है। मैं आपसे कह रहा हूं कि वैज्ञानिक ढंग से बीमार होना भी होता है, अवैज्ञानिक ढंग से भी बीमार होना होता है। अन-साइंटिफिक वे.ज ऑफ बीइंग इल हैं। असल में जो बीमारी चित्त के तल से शुरू होती है और शरीर पर आती है, वह वैज्ञानिक रूप से हल नहीं हो सकती।
अब एक स्त्री को मैं जानता हूं, युवती को, जिसकी आंखें अंधी हो गईं। लेकिन जो अंधापन था वह साइकोलाजिकल ब्लाइंडनेस थी। उसकी आंखें सच में ही अंधी नहीं हो गई थीं। आंख के जानकारों ने कहा कि आंखें बिल्कुल ठीक हैं; लड़की धोखा दे रही है। लेकिन लड़की बिल्कुल धोखा नहीं दे रही थी। क्योंकि आप उसको आग की तरफ छोड़ दें, तो वह आग की तरफ भी चली जाती थी। वह दीवाल से भी टकराती थी और सिर भी फोड़ लेती थी। वह लड़की धोखा नहीं दे रही थी, आंखें उसकी सच में ही अंधी हो गई थीं। लेकिन चिकित्सक की पकड़ के बाहर थी बीमारी। मेरे पास उसे लाए थे। तो मैं उसको समझने की कोशिश किया। पता चला कि किसी से उसका प्रेम है और घरवाले लोगों ने उसके प्रेमी से उसका मिलना- जुलना बंद कर दिया। जब मैं निरंतर उससे थोड़े दो-चार दिन बात किया, तो उसने कहा कि मुझे तो सिवाय उसके किसी को देखने की इच्छा ही नहीं है। यह संकल्प कि सिवाय उसके अब देखना ही नहीं है किसी को, इतनी तीव्रता से अगर मन में उठे कि अब उसके सिवाय देखने का कोई अर्थ ही न रहा, तो आंखें साइकोलाजिकली ब्लाइंड हो जाएंगी, आंखें अंधी हो जाएंगी, आंखें देखना बंद कर देंगी। यह आंख की एनाटॉमी को देख कर नहीं समझा जा सकेगा; क्योंकि आंख की एनाटॉमी बिल्कुल ही ठीक होगी, आंख का यंत्र बिल्कुल ही ठीक होगा। सिर्फ पीछे से जो ध्यान देने वाला था आंख के, वह सरक गया, उसने हटा लिया अपना हाथ।
यह हम रोज अनुभव करते हैं, लेकिन हमारे ख्याल में नहीं है कि हमारे शरीर का यंत्र तभी तक काम करता है जब तक हम पीछे मौजूद होते हैं।
अब एक युवक खेल रहा है--हाकी के मैदान पर या फुटबाल के मैदान पर। उसके पैर को चोट लग गई है, खून बह रहा है। उसे कोई पता नहीं है। सबको दिखाई पड़ रहा है देखने वालों को, उसको भर दिखाई नहीं पड़ रहा है। फिर खेल बंद हो गया आधा घंटे बाद। वह पैर पकड़ कर बैठ गया है और चिल्ला रहा है कि मुझे चोट कब लग गई? बहुत दर्द है!
यह आधा घंटा हो गया चोट लगे! हुआ क्या? इसके पैर में चोट लगी; इसके पैर
का यंत्र बिल्कुल ठीक है, क्योंकि आधा घंटे बाद उसने खबर दी। आधा घंटे पहले खबर क्यों न मिल सकी? इसकी अटेंशन वहां मौजूद नहीं थी; इसकी अटेंशन हट गई थी। इसका ध्यान वहां नहीं था; इसका ध्यान खेल में था। और ध्यान इतना था खेल में कि पैर पर होने लायक कोई ध्यान की मात्रा न बची थी जो पैर में दौड़ जाए। पैर खबर देता रहा होगा। पैर के स्नायुओं ने झटके दिए होंगे। पैर ने खटखटाए होंगे अपने तार। पैर ने अपने एक्सचेंज पर पूरी खबर भेजी होगी। लेकिन वह जो एक्सचेंज पर आदमी था, वह सोया हुआ था, वह गहरी नींद में था, या वह कहीं और मौजूद था। वह एब्सेंट था। वह उपस्थित नहीं था। आधा घंटे बाद जब वह आया वापस, तब पता चल सका कि पैर में चोट है।
मैंने उसके घर के लोगों को कहा कि आप एक काम करें। मैं समझता हूं कि जिसे देखने के लिए उसने सोचा था कि उसकी आंखें हैं, अगर उसे आपने नहीं देखने दिया, तो उसने पार्शियल स्युसाइड कर ली है, आंखों की आत्महत्या कर

ली है। और कुछ नहीं हो गया है, आंशिक आत्महत्या में गुजर गई है वह लड़की। आप उसके प्रेमी को मिलने दें।
उन्होंने कहा, इससे आंख का क्या संबंध है?
मैंने कहा, एक कोशिश करके देखें।
और जैसे ही उसको खबर की गई कि उसके प्रेमी से मिलने की उसे आज्ञा है।
और उसे खबर की गई कि पांच बजे उसका प्रेमी मिलने आएगा। वह दरवाजे के बाहर आकर खड़ी हो गई। उसकी आंख ठीक है!
नहीं, यह धोखा नहीं है, डिसेप्शन नहीं है। और अब तो हिप्नोसिस ने इतने प्रयोग किए हैं कि हम समझ सकते हैं कि धोखे का कोई उपाय नहीं है। अगर ठीक से सएमोहित व्यक्ति के हाथ में, गहरे सएमोहन में गए व्यक्ति के हाथ में--यह मैं अपने किए हुए प्रयोग की बात आपसे कर रहा हूं--अगर साधारण कंकड़ उठा कर रख दिया जाए और कहा जाए कि अंगारा है, तो वह ठीक वैसा ही व्यवहार करेगा जैसा अंगारे के साथ करता है--फेंकेगा, चिल्लाएगा, चीखेगा कि मैं जल गया! यहां तक ठीक है, लेकिन हाथ पर फफोला भी आ जाएगा, तब दिक्कत शुरू होती है। अगर हाथ पर, मन में इस ख्याल से कि अंगारा रख दिया है, फफोला आ सकता है, तो फिर इस फफोले का इलाज आपकोशरीर से शुरू करना खतरनाक है। इस फफोले का इलाज मन की तरफ से शुरू करना पड़ेगा।
आदमी का एक ही छोर हमारे ख्याल में है और इसलिए धीरे-धीरे हमने शरीर
की बीमारियां तो कम कर ली हैं और मन की बीमारियां बढ़ती चली गई हैं। अब तो, जो बहुत वैज्ञानिक भाषा में सोचते हैं, वे भी इस बात के लिए राजी हैं कि कम से कम फिफ्टी-फिफ्टी का अनुपात हो गया है--पचास प्रतिशत बीमारियां मानसिक हैं। हिंदुस्तान में नहीं, क्योंकि मानसिक बीमारी के लिए मन का होना भी जरूरी है। हिंदुस्तान में अभी भी पंचानबे प्रतिशत बीमारियां शारीरिक हैं। लेकिन अमेरिका में अनुपात बढ़ता जा रहा है।
मानसिक बीमारी का मतलब यह है कि उसका जन्म होता है भीतर और वह फैलती
है बाहर की तरफ। मानसिक बीमारी आउट-गोइंग है और शारीरिक बीमारी इन-गोइंग है। अगर मानसिक बीमारी का आपने शारीरिक इलाज किया तो मानसिक बीमारी दूसरा रास्ता तत्काल खोजेगी। इसलिए मानसिक बीमारी के सिर्फ हम झरने बंद कर सकते हैं--एक जगह से, दूसरी जगह से, तीसरी जगह से। वे चौथी जगह से निकलेंगे, पांचवीं जगह से निकलेंगे। और जहां भी कमजोर हिस्सा होगा व्यक्तित्व का, वहां से निकलना शुरू हो जाएगा। इसलिए चिकित्सक कई दफे बीमारी ठीक करने में सहयोगी नहीं होता, एक बीमारी को हजार बीमारियां बना देने में सहयोगी हो जाता है। जो एक धारा से निकल सकती है बात, वह अनेक धाराओं में बह कर निकलने लगती है, क्योंकि जगह-जगह हम रुकावट लगा देते हैं।
ध्यान मेरे लिए दूसरे छोर की चिकित्सा है। स्वभावतः, औषधि निर्भर करेगी पदार्थ पर, ध्यान निर्भर करेगा चेतना पर। ध्यान की कोई गोली नहीं हो सकती। हालांकि कोशिश चलती है। एल.एसड़ी. है, मैस्कलीन है, मारिजुआना है। हजार उपाय चलते हैं। हजार उपाय चलते हैं कि ध्यान की भी हम कोई गोली बना लें। लेकिन ध्यान की कोई गोली हो नहीं सकती। असल में ध्यान की गोली बनाने की कोशिश वही पुरानी जिद्द है कि हम इलाज बाहर से ही करेंगे। सब इलाज हम बाहर से ही करेंगे। अगर भीतर चित्त भी रुग्ण होगा तो भी इलाज हम बाहर से ही करेंगे; इलाज भीतर से नहीं करेंगे।
लेकिन मैस्कलीन हो, एल.एसड़ी. हो, और-और तरह के ड्रग्स हों, जो धोखा दे सकते हैं स्वास्थ्य का, आंतरिक स्वास्थ्य का, लेकिन वे आंतरिक स्वास्थ्य बना नहीं सकते। कोई रासायनिक ढंग से हम मनुष्य के अंतिम छोर पर नहीं पहुंच सकते हैं। जितने हम भीतर जाते हैं, उतनी ही रासायनिक गतिविधि क्षीण होती चली जाती है। जितने हम भीतर जाते हैं मनुष्य के, उतना ही पौदगलिक, फिजिकल, मैटीरियल एप्रोच कम अर्थ की रह जाती है। नॉन-मैटीरियल एप्रोच, कहना चाहिए कि एक साइकिक, मानसिक पहुंच।
लेकिन अभी तक नहीं हो पाया कुछ प्रिज्युडिसिस के कारण, कुछ पक्षपातों
के कारण। और बड़े मजे की बात है कि डाक्टर, दुनिया के दो-तीन मोस्ट आर्थाडॉक्स प्रोफेशंस में से एक है। जो लोग दुनिया में बहुत आर्थाडॉक्स

हैं, उनमें प्रोफेसर्स और डाक्टर्स अग्रणीय हैं। ये जल्दी पुरानी धारणाएं नहीं छोड़ते।
इसके कारण भी हैं। शायद स्वाभाविक कारण हैं। बड़ा स्वाभाविक कारण तो
यह है कि डाक्टर्स और प्रोफेसर्स अगर जल्दी पुरानी धारणाएं छोड़ें, बहुत फ्लेक्सिबल हों, तो प्रोफेसर्स बच्चों को सिखाने में मुश्किल में पड़ जाएंगे। चीजें फिक्स्ड होनी चाहिए, तो वे ठीक से सिखा पाते हैं। तय होनी चाहिए, अनिश्चित नहीं होनी चाहिए; तरल नहीं होनी चाहिए, लिक्विड नहीं होनी चाहिए, ठोस होनी चाहिए; तो उनको सिखाते वक्त कांफिडेंस होता है। और प्रोफेसर्स को जितनी कांफिडेंस की जरूरत होती है उतनी चोर और डाकुओं को भी नहीं होती! उसे आत्मविश्वास होना चाहिए कि वह जो कह रहा है वह बिल्कुल एब्सोल्यूटली ठीक है। और जिसको भी ऐसी प्रोफेशनल जरूरत है कि वह बिल्कुल पूर्णरूप से ठीक है, वह आर्थाडॉक्स हो जाता है।
शिक्षक आर्थाडॉक्स हो जाते हैं। उससे भारी नुकसान पहुंचता है। क्योंकि शिक्षा सबसे कम आर्थाडॉक्स होनी चाहिए। नहीं तो विकास में बाधा डालेगी। इसलिए दुनिया में कोई शिक्षक आमतौर से आविष्कारक नहीं होते। सारी यूनिवर्सिटीज में इतने प्रोफेसर्स हैं, लेकिन आविष्कार यूनिवर्सिटी के बाहर लोग करते हैं, भीतर नहीं करते! नोबल प्राइज पाने वाले सत्तर प्रतिशत से ऊपर लोग यूनिवर्सिटीज के बाहर के लोग हैं।
दूसरा धंधा जो बहुत ही आर्थाडॉक्स है वह डाक्टर का है। उसका भी प्रोफेशनल कारण है कि उसे बहुत जल्दी निर्णय लेने पड़ते हैं। मरीज अभी मर रहा है! अगर बहुत सोच-विचार करे, तो सोच-विचार तो हो जाएगा, लेकिन मरीज नहीं बचेगा। अगर वह बहुत अन-आर्थाडॉक्स हो और बहुत नये-नये प्रयोग करता हो, तो खतरा है। उसे तत्काल... तत्काल उत्तर जिसे खोजने हैं, वह हमेशा पुराने ज्ञान पर निर्भर होता है, नये ज्ञान की झंझट में नहीं पड़ता। तत्काल उत्तर, जिसे रेडीमेड उत्तर चाहिए चौबीस घंटे, उसे हमेशा पुराने ज्ञान पर निर्भर होना पड़ता है।
इसलिए मेडिकल साइंस मेडिकल रिसर्च से करीब-करीब तीस साल पीछे चलती है। मेडिकल प्रोफेशन मेडिकल रिसर्च से कम से कम तीस साल पीछे चलता है। और इसलिए बहुत से मरीजों को बेकार मरना पड़ता है और परेशान होना पड़ता है। क्योंकि सच में जो अब नहीं होना चाहिए, वह होता चला जाता है।
पर वह प्रोफेशनल दिक्कत है। और इसलिए चिकित्सक की कुछ मान्यताएं जड़बद्ध हैं बहुत गहरे में। उनमें एक मान्यता उसकी औषधि पर भरोसा है आदमी से ज्यादा। रासायनिक तत्वों पर भरोसा है, केमिकल्स पर ज्यादा भरोसा है बजाय चेतना के। कांशसनेस से ज्यादा केमिस्ट्री महत्वपूर्ण है उसे। इसका बड़ा घातक परिणाम हो रहा है। क्योंकि जब तक केमिस्ट्री महत्वपूर्ण है, तब तक कांशसनेस पर प्रयोग नहीं किए जा सकते।
इधर कुछ दो-चार प्रयोग की बात मैं करना चाहूंगा, जिनसे ख्याल आ सके।
अब जैसे, मां से बच्चा पैदा हो, तो पेनलेस चाइल्ड बर्थ पुरानी समस्या है। पुरानी समस्या है कि मां से बच्चा बिना दर्द के कैसे पैदा हो जाए? हालांकि धर्मगुरु इसके खिलाफ हैं कि बिना दर्द के बच्चा पैदा हो। असल में धर्मगुरु इसके ही खिलाफ हैं कि दुनिया बिना दर्द की हो जाए। क्योंकि दुनिया जिस दिन बिना दर्द की होगी, धर्मगुरु एकदम आउट ऑफ प्रोफेशन हो जाएगा, उसका कोई मतलब नहीं रह जाएगा। दर्द है, दुख है, पीड़ा है, तो पुकार है। शायद भगवान भी एक दिन निग्लेक्टेड हो जाए, अगर दुनिया में दुख न हो। शायद ही कोई जाकर प्रार्थना करे; क्योंकि हम दुख में ही उसका स्मरण करते हैं। तो धर्मगुरु निरंतर खिलाफत में है। वह कहता है, मां को जो दर्द होता है बच्चे की प्रसव-पीड़ा में, वह नेचरल है, वह होना ही चाहिए, वह भगवान की व्यवस्था है।
यह बात झूठी है। कोई भगवान की व्यवस्था बच्चे के जन्म के समय दर्द की नहीं है। चिकित्सक विश्वास करता है कि बेहोशी की दवाएं दे दी जाएं, कोई केमिकल व्यवस्था की जाए, एनस्थेसिया हो, जिससे कि हम पेनलेस बर्थ...
ऐसे चिकित्सक के जो उपाय हैं, वे शरीर से शुरू होते हैं, कि हम शरीर को ऐसी हालत में ला दें कि पता न चले कि दर्द हो रहा है। स्वभावतः स्त्रियां

खुद भी इसी का प्रयोग कर रही हैं हजारों साल से। इसलिए दुनिया में पचहत्तर प्रतिशत के करीब बच्चों को रात में पैदा होना पड़ता है; दिन में मुश्किल है पैदा होना। क्योंकि दिन में स्त्री बहुत सचेतन होती है; रात में नींद में सो जाती है, रिलैक्स हो जाती है। इसलिए सत्तर-पचहत्तर परसेंट बच्चों को सूरज की रोशनी में पैदा होने का मौका नहीं मिलता, उनको अंधेरे में ही पैदा होना पड़ता है। स्त्री नींद में होती है तो थोड़ी रिलैक्स हो जाती है, तो बच्चे को जन्म लेने में आसानी पड़ती है। मां बच्चे को जन्म के साथ ही बाधा देनी शुरू कर देती है, बाद में तो बहुत बाधाएं देती है, लेकिन जन्म के पहले क्षण से ही बाधाएं देनी शुरू कर देती है।
अब एक उपाय तो यह है कि हम कोई केमिकल प्रयोग करें और शरीर को ऐसा शिथिल कर दें जैसा वह नींद में हो जाता है। यह उपाय काम में लाया जा रहा है। इसके अपने खतरे हैं। सबसे बड़ा खतरा तो यह है कि हम आदमी की चेतना पर भरोसा जरा भी नहीं करते। और धीरे-धीरे जब आदमी की चेतना पर भरोसा कम किया जाता है तो आदमी की चेतना खोती चली जाती है।
लोजिम नाम के एक चिकित्सक ने आदमी की चेतना पर भरोसा किया और हजारों स्त्रियों को दुख और दर्द से रहित बच्चे पैदा करवाने की व्यवस्था की है। वह कांशस कोआपरेशन का मेथड है--कि जब बच्चा पैदा हो तो मां मेडिटेटिवली, ध्यानपूर्ण ढंग से बच्चे को जन्म देने में सहयोगी बने। वह राजी हो जाए, लड़े न, रेसिस्ट न करे। जो दर्द है वह बच्चे के पैदा होने से नहीं होता, वह मां की लड़ाई से पैदा होता है। वह पूरे वक्त जन्म देने के यंत्र को सिकोड़ रही है। वह डर रही है कि दर्द होगा; भयभीत है कि बच्चा पैदा न हो जाए। यह फियर सेंटर्ड रेसिस्टेंस उसको बच्चे को पैदा होने से रोक रहा है और बच्चा पैदा होना चाह रहा है। उन दोनों के बीच लड़ाई चल रही है--मां और बेटे के बीच लड़ाई है! उस लड़ाई में दर्द है। दर्द स्वाभाविक नहीं है, सिर्फ संघर्ष है, रेसिस्टेंस है।
इस रेसिस्टेंस को दो तरह से हम हल कर सकते हैं। एक कि शरीर की तरफ से
हम मां को बेहोश कर दें। लेकिन ध्यान रहे, जो मां बेहोशी में अपने बच्चे को जन्म देगी वह पूरे अर्थों में मां कभी भी न हो पाएगी। क्योंकि उसका कारण है। बच्चा जब पैदा होता है तो बच्चा ही पैदा नहीं होता, उसके साथ मां भी पैदा होती है। बच्चे का पैदा होना दोहरा जन्म है। एक तरफ बच्चा पैदा होता है, दूसरी तरफ एक साधारण स्त्री मां हो जाती है, जो उसके पहले वह नहीं थी। अगर बेहोशी में बच्चा पैदा हुआ तो मां और उसके बच्चे के बीच के बुनियादी संबंध को हमने विकृत किया। मां पैदा नहीं हो पाएगी, नर्स रह जाएगी पीछे। इसलिए मैं राजी नहीं हूं कि केमिकल ढंग से, शारीरिक ढंग से मां की बेहोशी में बच्चे को जन्म दिया जाए। मां पूरी कांशस होनी चाहिए अपने बच्चे के जन्म के क्षण में, क्योंकि उसी कांशसनेस में मां का भी जन्म होगा।
अगर यह दूसरी बात सही मालूम पड़े, तो इसका मतलब यह हुआ कि मां की चेतना
की ट्रेनिंग होनी चाहिए बच्चे के जन्म के वक्त। मां को सिखाना चाहिए कि जन्म के क्षण को वह ध्यानपूर्ण ढंग से ले ले। ध्यान का अर्थ मां के लिए दो होंगे। एक तो वह रेसिस्ट न करे, विरोध न करे। जो हो रहा है, उसके होने में सहयोगी हो। जैसे नदी बह रही है, जहां गड्ढा मिल जाता है वहीं बह जाती है। जैसे हवाएं बह रही हैं। जैसे वृक्ष से सूखे पत्ते गिर रहे हैं। कहीं कुछ खबर नहीं होती, वृक्ष से सूखा पत्ता नीचे गिर जाता है। ऐसे मां पूरी तरह, जो घटना घट रही है, उसमें सहयोगी हो--टोटल कोआपरेशन, पूर्ण सहयोग।
अगर मां अपने बच्चे को जन्म देते वक्त पूर्णतया सहयोगी हो जाए, कोई विरोध न करे, कोई भय न करे और जन्म की जो घटना घट रही है उसमें पूरी ध्यानपूर्ण होकर रसलीन हो जाए, तो पेनलेस बर्थ हो जाएगा, दर्द उससे विदा हो जाएगा। और यह मैं वैज्ञानिक आधारों पर कह रहा हूं; हजारों प्रयोग किए गए हैं, उस आधार पर कह रहा हूं। वह दर्द-मुक्त हो जाएगा।
और ध्यान रहे, इसके बड़े व्यापक परिणाम होंगे। पहला तो जिससे हमें दर्द मिले पहले ही क्षण में, उसके प्रति हमारे दुर्भाव बनने शुरू हो जाते हैं। जिससे हमारा संघर्ष हो पहले ही क्षण में, उससे हमारी दुश्मनी की

यात्रा शुरू हो जाती है। उससे हमारी मैत्री के संबंध में बाधा पड़ जाती है।
जिससे हमारी पहले ही कांफ्लिक्ट शुरू हो गई हो, उसके साथ कोआपरेशन बांधना बहुत मुश्किल हो जाएगा, ऊपरी हो जाएगा।
लेकिन जिस क्षण हम सहयोग से और सचेतन रूप से बच्चे को जन्म दे पाएं... ।
तो यह बड़े मजे की बात है। अब तक हमने प्रसव-पीड़ा शब्द सुना है, प्रसव-आनंद नहीं, क्योंकि हुआ नहीं। लेकिन अगर पूर्ण सहयोग हो तो प्रसव-आनंद भी शुरू हो जाएगा। तो मैं सिर्फ पेनलेस बर्थ के पक्ष में नहीं हूं, ब्लिसफुल बर्थ के पक्ष में हूं।
अगर हम चिकित्सा का उपयोग करें तो ज्यादा से ज्यादा, एट दि मोस्ट, पेनलेस बर्थ हो सकता है, लेकिन ब्लिसफुल बर्थ नहीं हो सकता। लेकिन अगर चेतना की तरफ से हम शुरू करें, तो एक आनंदपूर्ण जन्म हो सकता है। और हम पहली ही घड़ी से मां और बेटे के बीच एक अंतर्संबंध--सचेतन... ।
यह मैंने सिर्फ एक उदाहरण के लिए बात कही कि भीतर से भी कुछ किया जा सकता है। जब भी हम बीमार हैं, तब हम सिर्फ बाहर से लड़ रहे हैं। भीतर से वह आदमी सच में बीमारी से लड़ने को राजी है या नहीं, इसकी भी हमें कोई चिंता नहीं है। हो सकता है यह बीमारी निमंत्रित हो। निमंत्रित बीमारियां बड़ी संख्या में हैं। असल में बहुत कम बीमारियां हैं जो आती हैं, बहुत अधिक बीमारियां हैं जो बुलाई जाती हैं। लेकिन हमने निमंत्रण बहुत पहले दिया होता है, आती बहुत देर से हैं, इसलिए हम संबंध नहीं जोड़ पाते।
हजारों साल तक हजारों कौमें दुनिया में ऐसी थीं, जिनको यह ख्याल नहीं
था कि काम-संभोग से बच्चे के पैदा होने का कोई भी संबंध है। क्योंकि नौ महीने का फासला था; कार्य-कारण को, कॉ.ज और इफेक्ट को इतने दूर रखना मुश्किल था। तो काम-संभोग से बच्चे के पैदा होने का ख्याल बहुत कम कौमों को था। फिर सभी काम-संभोग बच्चे के पैदा होने में फलित नहीं होते, इसलिए भी कोई वजह नहीं थी सोचने की। यह तो बहुत बाद में ख्याल आया कि वह जो नौ महीने पहले घटना घटी है, वह नौ महीने बाद फलित हो रही है। उसके लिए कॉ.ज-इफेक्ट का संबंध जोड़ा जा सका।

हम भी अपनी बीमारियों को कभी बुलाते हैं, कभी वे आती हैं। इसमें फर्क
पड़ जाता है। इसलिए हम जोड़ नहीं पाते।
अब एक आदमी के संबंध में मैंने सुना है कि वह बैंक्रप्ट होने की हालत में है। उसकी हालत दिवाला निकल जाने की है। वह बाजार जाने से डरता है; दुकान जाने से डरता है; रास्ते पर निकलने से डरता है। अचानक एक दिन सुबह अपने बाथरूम से निकल रहा है और गिर पड़ा और पैरालाइज्ड हो गया। अब उसकी सब चिकित्सा चल रही है। उसको लकवा लग गया है, उसकी चिकित्सा चल रही है। लेकिन हम यह सोच ही नहीं पा रहे हैं कि यह आदमी पैरालाइज्ड होना चाहता था। इसने कांशसली ऐसा सोचा या नहीं, यह सवाल नहीं है। इसने ऐसी धारणा बनाई या नहीं, यह सवाल नहीं है--कि लकवा मुझे लग जाए। शायद ऐसी कभी धारणा नहीं बनाई। लेकिन कहीं चित्त में गहरे में, अनकांशस में, यह चाहता था कि बाजार न जाना पड़े, दुकान न जाना पड़े, रास्ते पर न निकलना पड़े। एक!
दूसरा यह यह भी चाहता था कि किसी तरह इस पर आक्रमण बंद हो और सहानुभूति शुरू हो। ये इसकी गहरी चाहें थीं। अब इसका शरीर इसको सहयोग देगा। शरीर सदा हमारे मन के पीछे छाया की तरह चल रहा है। वह सहयोग देगा। मन इंतजाम कर देगा।
असल में मन के इंतजाम का हमें पता नहीं है। अगर आप दिन भर उपवास करें
तो आप रात भोजन करेंगे। मन रात में इंतजाम कर देगा सपने में। वह कहेगा, दिन भर भूखे रहे, बहुत परेशान हुए, चलो राजा के घर निमंत्रण करवा देते हैं। तो रात आप भोजन कर लेंगे। मन इंतजाम कर देगा। वह कहेगा, जोशरीर से नहीं हो पाया, वह मन से किए देते हैं। रात सपने हम अधिकतम ऐसे ही देख रहे हैं, जो सब्स्टीट्यूट्स हैं। जो हम दिन में नहीं कर पाए, वह हम रात कर रहे हैं। मन इंतजाम कर रहा है।
अगर रात में आपको जोर से ख्याल उठा है कि पेशाब कर आऊं, तो मन घंटी बजा रहा है, वह कुछ इंतजाम करेगा। वह आपको बाथरूम भेज देगा सपने में, और आपको

वह जो ब्लैडर पर जोर पड़ना शुरू हुआ है, ख्याल में आ जाएगा कि ठीक है, बाथरूम हो आए हैं, सब ठीक हो गया। नींद न टूटे, इसलिए मन इंतजाम कर देगा। मन चौबीस घंटे आपकी जानी-अनजानी इच्छाओं के लिए इंतजाम कर रहा है।
अब यह आदमी लकवा खाकर गिर गया। अब हम इसका इलाज करने में लगे हुए हैं। हमारी सब दवाइयां--इसे नुकसान पहुंचाने की पूरी संभावना है। क्योंकि इसको लकवा है ही नहीं, यह निमंत्रित बीमारी है। अगर हम लकवा किसी तरह ठीक भी कर दें, तो यह दूसरी बीमारी पैदा करेगा, यह तीसरी बीमारी पैदा करेगा, यह चौथी बीमारी पैदा करेगा। असल में जब तक यह बाजार जाने की हिएमत नहीं जुटा पाता है, तब तक इसकी बीमारियां पैदा होती चली जाएंगी। और बीमार होते ही यह पाएगा कि सारी स्थिति बदल गई। अब यह कह सकता है कि बैंक्रप्ट होने के लिए जस्टीफिकेशन है। मैं क्या कर सकता हूं, लकवा लग गया है! अब यह कह सकता है किसी कर्जदार को कि भई कैसे चुका सकता हूं, देखते हैं मेरी हालत! सच तो यह है कि जब लेने वाला इसके सामने आएगा तो खुद ही शर्म अनुभव करेगा कि इससे कैसे मांगे। इसकी पत्नी इसकी ज्यादा सेवा करेगी, बेटे ज्यादा पैर दबाएंगे, मित्र देखने आने लगेंगे, इसकी खाट के पास लोग बैठेंगे।
असल में जब तक कोई बीमार न पड़े, हम कभी उसे प्रेम करते ही नहीं! तो जिसको भी प्रेम पाने की इच्छा हो, उसको बीमार पड़ना पड़ता है। स्त्रियां अक्सर बीमार पड़ी रहती हैं, उसका कुल कारण इतना है कि बीमारी उनके लिए प्रेम पाने का रास्ता हो गई है। वे जानती हैं कि पति को रोकने का और कोई उपाय नहीं है। पत्नी नहीं रोक पाती, बीमारी रोक पाती है। तो एक दफे पता चल जाए और इसका ख्याल मन में बैठ जाए तो जब भी सहानुभूति चाहिए, हम बीमार रहने लगेंगे। असल में बीमार के साथ सहानुभूति बताना बहुत खतरनाक है। बीमार का इलाज करना ठीक है, सहानुभूति बताना खतरनाक है। क्योंकि सहानुभूति से आप उसकी बीमारी में रस पैदा कर रहे हैं, जो कि खतरा सिद्ध हो सकता है।
अब यह आदमी लकवा खाकर गिर पड़ा है, अब इसका कोई इलाज इसे ठीक नहीं कर सकता, दूसरी बीमारियां बदल लेगा बस। क्योंकि लकवा इसकी बीमारी नहीं है, लकवा इसका भाव है। पक्षाघात मानसिक है। ऐसे लकवा वाले लोगों के संबंध में घटनाएं हैं--कि उनके घर में आग लग गई। वे दो साल से लकवे में पड़े थे, उठ नहीं सकते थे। घर में आग लगी, सारे लोग घर के बाहर पहुंच गए, तब घर के लोगों को पता चला कि अरे उनका क्या होगा? लेकिन देखा कि वे चले आ रहे हैं! वे भागे चले आ रहे हैं, जो कि उठ नहीं सकते थे! और जब घर के लोगों ने कहा कि आप और चल रहे हैं? तो उस आदमी ने कहा, मैं! मैं चल कैसे सकता हूं! वह वापस गिर गया। इसको क्या हुआ? नहीं, ऐसा नहीं कि यह धोखा दे रहा है। यह धोखा नहीं दे रहा है। बीमारी माइंड-ओरिएंटेड है, बॉडी-ओरिएंटेड नहीं है। बस इतना ही फर्क है।
इसलिए जब भी कोई चिकित्सक किसी मरीज को कहता है कि तुएहारी मानसिक बीमारी है, तो मरीज को अच्छा नहीं लगता। क्योंकि मानसिक बीमारी में ऐसा भाव झलकता है कि तुम नाहक ही बीमारी दिखला रहे हो। यह बात गलत है। कोई आदमी नाहक बीमारी नहीं दिखला रहा है। बीमारी के कारण हैं। और बीमारी के मानसिक कारण उतने ही महत्वपूर्ण हैं, जितने महत्वपूर्ण शारीरिक कारण हैं, बल्कि शायद ज्यादा महत्वपूर्ण हैं।
इसलिए किसी मरीज को भूल कर भी यह कहना कि तुएहें मानसिक बीमारी है, तुम मेंटली इल हो, चिकित्सक का दुर्व्यवहार है। इससे वह बीमार ठीक नहीं होगा, इससे सिर्फ चिकित्सक के खिलाफ होगा। क्योंकि अब तक हम मानसिक बीमारी के संबंध में सदभाव पैदा नहीं कर पाए। अगर मेरे पैर में चोट है तो सब सहानुभूति दिखाएंगे। लेकिन मेरे मन में चोट है तो लोग कहते हैं कि यह तो मानसिक बीमारी है। जैसे कि मैंने कोई गलती की है। पैर में चोट होती तो सहानुभूति भी मिलती, लेकिन मानसिक बीमारी जैसे मेरी कोई भूल है!
नहीं, भूल नहीं है। मानसिक बीमारी का अपना तल है। लेकिन चिकित्सक उसको स्वीकार नहीं करता है। नहीं करता है इसलिए कि उसके पास सिर्फ शारीरिक चिकित्सा का उपाय है, और कोई कारण नहीं है। उसके बियांड पड़ रही है जो बीमारी, उसको वह इनकार करता है। वह कहता है, यह बीमारी नहीं है। असल में

उसे कहना चाहिए कि यह मेरे हाथ के भीतर नहीं है। तुम और तरह का चिकित्सक खोजो या मुझे और तरह का चिकित्सक बनना पड़ेगा।
इस आदमी को और तरह का इलाज चाहिए। इस आदमी को भीतर से बाहर की तरफ आने वाला इलाज चाहिए। और हो सकता है, बहुत छोटी सी बात इसके भीतर की जिंदगी को बदल दे।
ध्यान मेरे लिए भीतर से बाहर की तरफ आने वाली चिकित्सा है।
बुद्ध ने तो... बुद्ध से किसी ने जाकर कहा है एक दिन कि आप कौन हैं? दार्शनिक हैं, विचारक हैं, संत हैं, योगी हैं--कौन हैं?
बुद्ध ने कहा, मैं सिर्फ एक वैद्य हूं। मैं एक चिकित्सक हूं। जस्ट ए फिजीशियन।
बुद्ध का उत्तर बहुत अदभुत है। मैं सिर्फ एक चिकित्सक हूं--भीतर की बीमारियों के संबंध में कुछ मुझे पता है, वह मैं तुमसे कहता हूं।
जिस दिन हमें यह ख्याल आ जाए कि भीतर की बीमारी के संबंध में कुछ करना
ही पड़ेगा, अन्यथा बाहर की बीमारी को न तो हम मिटा सकते हैं पूरी तरह, न समाप्त कर सकते हैं, उसी दिन हम पाएंगे कि रिलीजन और साइंस करीब आने शुरू हो गए, उसी दिन हम पाएंगे कि चिकित्सा और ध्यान करीब आने शुरू हो गए। और मेरी अपनी समझ यह है, इस सेतु को बनाने में चिकित्सा जितना बड़ा काम कर सकती है, उतना दूसरी कोई साइंस नहीं करेगी।
केमिस्ट्री को रिलीजन के पास आने की अभी कोई वजह नहीं है। फिजिक्स को
भी रिलीजन के पास आने की अभी कोई वजह नहीं है। गणित को भी रिलीजन के करीब आने की कोई वजह नहीं है। अभी गणित बिना धर्म के रह सकता है। मैं सोचता हूं सदा रह सकेगा; क्योंकि गणित कभी भी ऐसी स्थिति में पहुंचे जहां उसको धर्म की जरूरत पड़ जाए, ऐसा मुझे दिखाई नहीं पड़ता। यानी ऐसा कोई क्षण आ जाए जहां गणित को ऐसा लगे कि बिना धर्म के गणित विकसित नहीं होगा, ऐसा मैं कंसीव नहीं कर पाता। कभी नहीं आएगा। गणित अपने खेल को जारी रख सकता है अनंत तक। क्योंकि गणित एक खेल है; गणित जिंदगी नहीं है।
लेकिन चिकित्सक खेल में नहीं है, जिंदगी के साथ है। चिकित्सक ही शायद पहला ब्रिज बनेगा रिलीजन और साइंस के बीच। बन रहा है, विकसित समझदार मुल्कों में बनना शुरू हो गया है। क्योंकि चिकित्सक को आदमी के साथ व्यवहार करना है। और आदमी को, जैसा कि कार्ल गुस्ताव जुंग ने मरने के पहले कहा कि मैं एक चिकित्सक की हैसियत से यह कह सकता हूं कि चालीस साल की उम्र के बाद जितने मरीज मेरे पास आए, बुनियादी रूप से उनकी बीमारी धर्म का अभाव थी। बहुत हैरानी की बात है! बुनियादी रूप से उनकी बीमारी में धर्म का अभाव था। अगर उनको किसी तरह का धर्म दिया जा सके तो वे स्वस्थ हो जाएं।
यह कुछ समझने जैसा है। जैसे ही व्यक्ति की जिंदगी ढलनी शुरू होती है... पैंतीस साल तक उम्र चढ़ती है, पैंतीस साल के बाद उम्र ढलनी शुरू हो जाती है। पैंतीस साल पीक मोमेंट है। तो हो सकता है पैंतीस साल तक ध्यान की कोई जरूरत मालूम न पड़े, क्योंकि आदमी बॉडी-ओरिएंटेड है, अभी चढ़ रहा है शरीर।
अभी हो सकता है सब बीमारियां शरीर की हों। लेकिन पैंतीस साल के बाद बीमारियां नया रुख लेंगी, क्योंकि अब जिंदगी मौत की तरफ चलनी शुरू होगी। और जब जिंदगी बढ़ती है तो बाहर की तरफ फैलती है और जब आदमी मरता है तो भीतर की तरफ सिकुड़ता है। बुढ़ापा भीतर की तरफ सिकुड़ जाना है।
सच तो यह है कि शायद बूढ़े आदमी की सारी बीमारियों के बहुत गहरे में मृत्यु होती है। आमतौर से लोग कहते हैं कि फलां आदमी बीमारी के कारण मर गया। मैं मानता हूं, इससे ज्यादा उचित होगा कहना कि फलाना आदमी मरने के कारण बीमार हो गया। असल में मरने की संभावना हजार तरह की बीमारियों के लिए वल्नरेबिलिटी पैदा कर देती है। जैसे ही मुझे लगता है कि मैं मर जाऊंगा, मेरे सब द्वार खुल जाते हैं बीमारियों के लिए, मैं उनको पकड़ने लगता हूं। अगर एक आदमी को पक्का हो जाए कि वह कल मर जाएगा, तो बिल्कुल स्वस्थ आदमी बीमार पड़ जाएगा। सब तरह ठीक था, सब तरह की रिपोर्ट ठीक थी, एक्सरे ठीक था, उसका ब्लड-काउंट ठीक था, सब ठीक था, उसकी हृदय की गति ठीक थी, स्टेथस्कोप सब ठीक कहता था। लेकिन उसे अगर पक्का बता दिया जाए कि तुम चौबीस घंटे बाद मर जाने वाले हो, आप अचानक पाएंगे उसने हजारों बीमारियां पकड़नी शुरू कर दीं।

चौबीस घंटे में इतनी बीमारी पकड़ लेगा, जितनी चौबीस जिंदगी में पकड़ना मुश्किल था।
क्या हो गया इस आदमी को?
वह ओपन हो गया बीमारी के लिए, अब उसने रेसिस्टेंस छोड़ दिया। जब मरना
ही है, तो उसके भीतर जो चेतना की दीवाल, वह जो चेतना का विरोध था बीमारी के प्रति, वह शिथिल हो गया। अब वह मरने के लिए राजी हो गया, अब बीमारी आनी शुरू हो गई।
इसलिए रिटायर्ड आदमी जल्दी मर जाते हैं। रिटायर्ड आदमी को रिटायर्ड होने के पहले ठीक से समझ लेना चाहिए कि पांच-छह साल का उम्र का फर्क पड़ता है। जो आदमी सत्तर साल में मरता, वह पैंसठ में मरेगा। जो अस्सी में मरता, वह पचहत्तर में मर जाएगा। और बाकी वक्त रिटायरमेंट के जो दस-पंद्रह वर्ष गुजारेगा, वह मरने की तैयारी में। वह और कोई काम नहीं करेगा। क्योंकि जैसे ही एक दफा उसे लगा कि मैं जिंदगी के लिए बेकार हो गया, अब मेरा कोई काम न रहा। सड़क पर कोई नमस्कार नहीं करता। क्योंकि जब तक वह सेक्रेटेरिएट में था, बात और थी। अब कोई नमस्कार नहीं करता, कोई देखता नहीं। क्योंकि अब नमस्कार भी लोग दूसरों को करेंगे। सब चीज की इकोनॉमी है। सेक्रेटेरिएट में दूसरे लोग पहुंच गए, उनको नमस्कार करें कि अब आपको भी नमस्कार बजाते रहें, तो बहुत मुश्किल हो जाएगा। तो लोग आपको भूल जाएंगे। अब उस आदमी को अचानक लगता है कि वह बेकार हो गया, अपरूटेड हो गया, किसी को उसकी कोई जरूरत नहीं है। घर में बच्चे अपनी पत्नियों के साथ चित्र देखने जाने लगे हैं, परिचित धीरे-धीरे मरघट जाने लगे हैं। पुराने जिनके काम थे, अब उनके लिए वह बेकाम हो गया है। अचानक वल्नरेबिलिटी पैदा हो गई, अब वह मौत के लिए चारों तरफ से खुल गया।
मनुष्य की चेतना भीतर से कब स्वस्थ होती है?
एकः उसे भीतर की चेतना का अहसास शुरू हो जाए, भीतर की चेतना की फीलिंग शुरू हो जाए।
हमें आमतौर से भीतर की कोई फीलिंग नहीं होती। हमारी सब फीलिंग शरीर
की होती है--हाथ की होती है, पैर की होती है, सिर की होती है, हृदय की होती है। उसकी नहीं होती जो मैं हूं। हमारा सारा बोध, हमारी सारी अवेयरनेस घर की होती है, घर में रहने वाले मालिक की नहीं होती। यह बड़ी खतरनाक स्थिति है। क्योंकि कल अगर मकान गिरने लगेगा, तो मैं समझूंगा--मैं गिर रहा हूं। वही मेरी बीमारी बनेगी।
नहीं, अगर मैं यह भी जान लूं कि मैं मकान से अलग हूं, मकान के भीतर हूं, मकान गिर भी जाएगा, फिर भी मैं हो सकता हूं; तो बहुत फर्क पड़ेगा, बहुत बुनियादी फर्क पड़ जाएगा। तब मृत्यु का भय क्षीण हो जाएगा।
ध्यान के अतिरिक्त मृत्यु का भय कभी भी नहीं कटता।
तो ध्यान का पहला अर्थ हैः अवेयरनेस ऑफ वनसेल्फ।
हम सदा, जब भी होश में हैं, तो हमारा होश जो है वह अवेयरनेस अबाउट, किसी चीज के बाबत है सदा। वह कभी अपने बाबत नहीं है। इसीलिए तो हम अकेले बैठें तो हमको नींद आनी शुरू हो जाती है, क्योंकि वहां क्या करें? अखबार पढ़ें, रेडियो खोलें, तो थोड़ा जागना सा मालूम पड़ता है। अगर एक आदमी को हम बिल्कुल अकेले में छोड़ दें, अंधेरा कर दें कमरे में... । अंधेरे में इसीलिए नींद आ जाती है आपको, क्योंकि कुछ दिखाई नहीं पड़ता, तो कांशसनेस की कोई जरूरत नहीं रह जाती। कुछ चीज दिखाई पड़ती नहीं, तो अब क्या करें, सिवाय सोने के कोई उपाय नहीं मालूम पड़ता। अकेले पड़ जाएं, अंधेरा हो, कोई बात करने को न हो, कुछ सोचने को न हो, तो बस आप गए नींद में। और कोई उपाय नहीं है।
ध्यान रहे, नींद और ध्यान एक अर्थ में समान हैं, एक अर्थ में भिन्न। नींद का मतलब हैः आप अकेले हैं; लेकिन सो गए हैं। ध्यान का मतलब हैः आप अकेले हैं; लेकिन जागे हुए हैं। बस इतना ही फर्क है। अगर आप अपने अकेलेपन में और अपने भीतर जाग सकते हैं अपने प्रति...
एक आदमी बुद्ध के सामने बैठा है एक दिन और अपने पैर का अंगूठा हिला रहा है। बुद्ध ने कहा कि अंगूठा क्यों हिलाते हो?
उस आदमी ने कहा, छोड़िए! ऐसे ही हिलता था, मुझे कुछ पता न था।

बुद्ध ने कहा, तुएहारा अंगूठा हिले और तुएहें पता न हो! अंगूठा किसका
है यह? तुएहारा ही है?
उसने कहा, मेरा ही है। लेकिन आप भी कहां की बातें कर रहे हैं! आप जो बात करते थे, जारी रखिए।
बुद्ध ने कहा, वह मैं नहीं करूंगा अब, क्योंकि जिस आदमी से मैं बात कर रहा हूं, वह बेहोश है। पता नहीं तुम मेरा सुन भी रहे हो कि नहीं...
उसने कहा कि आप भी कैसी बातें कर रहे हैं! अंगूठा हिल रहा है...
बुद्ध ने कहा, तो अपने अंगूठे के हिलने का आगे से होश रखो। तो उससे दोहरा होश... जो होश में है अंगूठे के प्रति, उसका होश भी पैदा हो जाएगा। अवेयरनेस इ.ज आलवेज डबल एरोड। अगर हम उसका प्रयोग करें तो उसका एक तीर
तो बाहर की तरफ रह जाएगा और दूसरा तीर भीतर की तरफ हो जाएगा।
तो ध्यान का पहला अर्थ है कि हम अपने शरीर और स्वयं के प्रति जागना शुरू करें। यह जागरण अगर बढ़ सके तो आपका मृत्यु-भय क्षीण हो जाता है। और जो चिकित्सा-शास्त्र मनुष्य को मृत्यु के भय से मुक्त नहीं कर सकता, वह चिकित्सा-शास्त्र मनुष्य नाम की बीमारी को कभी भी स्वस्थ नहीं कर सकता। हां, चिकित्सा-शास्त्र कोशिश करता है। वह कोशिश करता है उम्र लंबी करके। उम्र लंबी करने से सिर्फ मृत्यु की प्रतीक्षा लंबी होती है, और कोई फर्क नहीं पड़ता। और लंबी प्रतीक्षा से छोटी प्रतीक्षा अच्छी है। उम्र लंबी करने से सिर्फ मौत और भी दुखदायी होती चली जाती है।
क्या आपको अंदाज है कि जिन मुल्कों में चिकित्सा-शास्त्र ने लोगों की उम्र ज्यादा बढ़ा दी है, वहां एक नया आंदोलन चल रहा है, वह है अथनासिया का। वह यह है कि बूढ़े कह रहे हैं कि हमें मरने का अधिकार होना चाहिए कांस्टिट्यूशन में। क्योंकि आप हमको लटकाए चले जा रहे हैं और हमको अब जिंदा रहना बहुत कठिन हो गया है। आप तो लटका सकते हैं। एक आदमी को आक्सीजन का सिलेंडर रख कर न मालूम कितनी देर तक लटका सकते हैं और उसको जिंदा रख सकते हैं। लेकिन उसकी जिंदगी मरने से बदतर हो जाएगी।
अब न मालूम कितने लोग यूरोप और अमेरिका के अस्पतालों में उलटे- सीधेशीर्षासन की हालत में आक्सीजन के सिलेंडरों से बंधे हुए पड़े हैं! उनको मरने का हक नहीं है! वे मरने के हक की मांग कर रहे हैं। मैं मानता हूं कि आने वाले, इस सदी के पूरे होते-होते दुनिया के सभी सुशिक्षित राष्ट्रों के कांस्टिट्यूशन में जन्मसिद्ध अधिकारों में मरने का अधिकार जुड़ जाएगा। क्योंकि चिकित्सक को यह हक नहीं हो सकता कि वह किसी आदमी को उसकी इच्छा के विपरीत जिंदा रखे। अब तक तो हक यह नहीं था कि उसकी इच्छा के विपरीत मारे। लेकिन अभी तक जिंदा रखने का उपाय नहीं था। अब है।
आदमी की उम्र बढ़ाने से मृत्यु का भय कम नहीं होगा। आदमी को स्वस्थ कर देने से जिंदगी ज्यादा सुखी हो जाएगी, लेकिन ज्यादा अभय नहीं होगी। अभय तो सिर्फ एक ही स्थिति में, फियरलेसनेस एक ही स्थिति में आती है कि मुझे भीतर पता चल जाए कि कुछ है जो मरता ही नहीं। उसके बिना कभी नहीं हो सकता।
तो ध्यान उस अमरत्व का बोध है। वह जो मेरे भीतर है, वह कभी नहीं मरता है। और वह जो मेरे बाहर है, वह मरता ही है। इसलिए जो बाहर है, उसकी चिकित्सा करो कि वह जितने दिन जीए, सुख से जीए। और वह जो भीतर है, उसका स्मरण करो कि मृत्यु भी द्वार पर खड़ी हो जाए तो भय न कंपा दे।
भीतर ध्यान, बाहर चिकित्सा, चिकित्सा-शास्त्र को परिपूर्ण शास्त्र बना सकते हैं। तो मेडिसिन और मेडिटेशन को मैं एक ही शास्त्र के दो छोर मानता हूं, जिनके बीच अभी कड़ियां नहीं जुड़ पाई हैं। लेकिन धीरे-धीरे-धीरे- धीरे करीब बात आ रही है। आज तो अमेरिका के सभी विकसित अस्पतालों में एक हिप्नोटिस्ट का होना जरूरी हो गया है। लेकिन हिप्नोसिस मेडिटेशन नहीं है। पर यह अच्छा कदम है। यह इस बात की स्वीकृति है कि आदमी की चेतना के साथ सीधा कुछ करने की जरूरत है, सिर्फ शरीर के साथ करना पर्याप्त नहीं है। आज हिप्नोटिस्ट आएगा, मैं मानता हूं कल अस्पताल में मंदिर भी आएगा। वह पीछे आएगा, थोड़ा वक्त लगेगा। हिप्नोटिस्ट के बाद एक डिपार्टमेंट योगी का भी हर अस्पताल में आ ही जाएगा। आ ही जाना चाहिए। तब हम पूरे व्यक्ति को ट्रीट कर पाएंगे। शरीर की चिकित्सक फिक्र कर ले। उसके चित्त की साइकोलॉजिस्ट,

साइकियाट्रिस्ट फिक्र कर ले। उसकी आत्मा की फिक्र योग कर ले। जिस दिन अस्पताल इस तरह पूरे मनुष्य के व्यक्तित्व को ए.ेज ए होल, ए.ेज ए टोटेलिटी स्वीकार करके चिकित्सा करेगा, मैं मानता हूं वह मनुष्य के जीवन में बड़े मंगल का क्षण होगा। ऐसा मंगल का क्षण करीब आए, इस दिशा में आपसे सोचने की प्रार्थना करता हूं।
मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे प्रभु को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

हसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानम् दूसरा प्रवचन

ध्यानः एक वैज्ञानिक दृष्टि

मेरे प्रिय आत्मन्!
सुना है मैंने, एक खतरनाक तूफान में कोई नाव उलट गई थी। एक व्यक्ति उस नाव में बच गया और एक निर्जन द्वीप पर जा लगा। दिन, दो दिन, चार दिन, सप्ताह, दो सप्ताह उसने प्रतीक्षा की कि जिस बड़ी दुनिया का वह निवासी था वहां से कोई उसे बचाने आ जाएगा। फिर महीने भी बीत गए और वर्ष भी बीतने लगा। फिर किसी को आते न देख कर वह धीरे-धीरे प्रतीक्षा करना भी भूल गया।
पांच वर्षों के बाद कोई जहाज वहां से गुजरा। उस एकांत निर्जन द्वीप
पर उस आदमी को निकालने के लिए जहाज ने लोगों को उतारा। और जब उन लोगों ने उस खो गए आदमी को वापस चलने को कहा, तो वह विचार में पड़ गया। उन लोगों ने कहा, क्या विचार कर रहे हैं! चलना है या नहीं? तो उस आदमी ने कहा, अगर तुएहारे साथ जहाज पर कुछ अखबार हों, जो तुएहारी दुनिया की खबर लाए हों, तो मैं पिछले दिनों के कुछ अखबार देख लेना चाहता हूं। अखबार देख कर उसने कहा, तुम अपनी दुनिया सएहालो और अपने अखबार भी। और मैं जाने से इनकार करता हूं। बहुत हैरान हुए वे लोग। उनकी हैरानी स्वाभाविक थी। पर वह आदमी कहने लगा, इन पांच वर्षों में मैंने जिस शांति, जिस मौन और जिस आनंद को अनुभव किया है, वह मैंने पूरे जीवन के पचास वर्षों में भी तुएहारी उस बड़ी दुनिया में कभी अनुभव नहीं किया था। और सौभाग्य और परमात्मा की अनुकंपा कि उस दिन तूफान में नाव उलट गई और मैं इस द्वीप पर आ लगा। यदि मैं कभी इस द्वीप पर न लगा होता, तो शायद मुझे पता भी न चलता कि मैं किस बड़े पागलखाने में पचास वर्षों से जी रहा था।
हम उस बड़े पागलखाने के हिस्से हैं! उसमें ही पैदा होते हैं, उसमें ही बड़े होते हैं, उसमें ही जीते हैं। और इसलिए कभी पता भी नहीं चल पाता कि जीवन में जो भी पाने योग्य है, वह सभी हमारे हाथ से चूक गया है। और जिसे हम सुख कहते हैं और जिसे हम शांति कहते हैं, उसका न तो सुख से कोई संबंध है और न शांति से कोई संबंध है। और जिसे हम जीवन कहते हैं, शायद वह मौत से किसी भी हालत में बेहतर नहीं है।
लेकिन परिचय कठिन है। चारों ओर एक शोरगुल की दुनिया है, चारों ओर शब्दों का, शोरगुल का उपद्रवग्रस्त वातावरण है। उस सारे वातावरण में हम वे रास्ते ही भूल जाते हैं, जो भीतर मौन और शांति में ले जा सकते हैं।
इस देश में--और इस देश के बाहर भी--कुछ लोगों ने अपने भीतर भी एकांत द्वीप की खोज कर ली है। न तो यह संभव है कि सभी की नावें डूब जाएं, न यह संभव है कि इतने तूफान उठें, और न ही यह संभव है कि इतने निर्जन द्वीप मिल जाएं जहां सारे लोग शांति और मौन को अनुभव कर सकें। लेकिन फिर भी यह संभव है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने भीतर ही उस निर्जन द्वीप को खोज ले।
ध्यान अपने ही भीतर उस निर्जन द्वीप की खोज का मार्ग है।
यह भी समझ लेने जैसा है कि दुनिया के सारे धर्मों में बहुत विवाद है। सिर्फ एक बात के संबंध में विवाद नहीं है। और वह बात ध्यान है। मुसलमान कुछ और सोचते, हिंदू कुछ और, ईसाई कुछ और, पारसी कुछ और, जैन-बौद्ध कुछ और। उनके सिद्धांत सबके बहुत भिन्न-भिन्न हैं। लेकिन एक बात के संबंध में इस पृथ्वी पर कोई भी भेद नहीं है। और वह यह कि जीवन के आनंद का मार्ग ध्यान से होकर जाता है। और परमात्मा तक अगर कोई भी कभी पहुंचा है तो ध्यान की सीढ़ी के अतिरिक्त और किसी सीढ़ी से नहीं। वह चाहे जीसस, और फिर चाहे बुद्ध, और चाहे मोहएमद, और चाहे महावीर--कोई भी, जिसने जीवन की परम धन्यता को अनुभव किया है, उसने अपने ही भीतर गहरे में डूब कर उस निर्जन द्वीप की खोज कर ली है।
इस ध्यान के विज्ञान के संबंध में दो-तीन बातें आपसे कहना चाहूंगा। पहली बात तो यह कि साधारणतः जब हम बोलते हैं, तभी हमें पता चलता है कि हमारे भीतर कौन से विचार चलते थे। ध्यान का विज्ञान इस स्थिति को--जब हम बोलते हैं तभी हमें पता चलता है कि हमारे भीतर क्या था--अत्यंत ऊपरी

अवस्था मानता है। अगर एक आदमी न बोले तो हम पहचान भी न पाएं कि वह कौन है, क्या है।
सुकरात ने किसी आदमी से मिलते वक्त कहा कि तुम बोलो कुछ, तो मैं पहचान लूं कि तुम कौन हो। तुम न बोलो कुछ, तो पहचान बहुत मुश्किल है।
इसीलिए तो हम जानवरों को अलग-अलग नहीं पहचान पाते, क्योंकि वे बोलते नहीं हैं। और मौन में सारी शक्लें एक जैसी हो जाती हैं। शब्द हमारे बाहर प्रकट होता है, तभी हमें पता चलता है--हमारे भीतर क्या था।
ध्यान का विज्ञान कहता है, यह अवस्था सबसे ऊपरी अवस्था है चित्त की, सरफेस है, ऊपर की पर्त है। हम नहीं बोले होते हैं तब भी पहले उसके विचार भीतर चलता है। अन्यथा हम बोलेंगे कैसे? अगर मैं कहता हूं--"ओम", तो इसके पहले कि मैंने कहा, उसके पहले मेरे भीतर ओंठों के पार और मेरे हृदय के किसी कोने में "ओम" का निर्माण हो जाता है।
ध्यान कहता है, वह दूसरी पर्त है व्यक्तित्व की गहराई की। साधारणतः आदमी ऊपर की पर्त पर ही जीता है। उसे दूसरी पर्त का भी पता नहीं होता। उसके बोलने की दुनिया के नीचे भी एक सोचने का जगत है, उसका भी उसे कुछ पता नहीं होता।
काश, हमें हमारे सोचने के जगत का पता चल जाए तो हम बहुत हैरान हो जाएं। जितना हम सोचते हैं, उसका बहुत थोड़ा सा हिस्सा वाणी में प्रकट होता है। ठीक ऐसे ही जैसे एक बर्फ के टुकड़े को हम पानी में डाल दें तो एक हिस्सा ऊपर हो और नौ हिस्सा नीचे डूब जाए। हमारा भी नौ हिस्सा जीवन का, विचार का तल नीचे डूबा रहता है। एक हिस्सा ऊपर दिखाई पड़ता है। इसीलिए अक्सर ऐसा हो जाता है कि आप क्रोध कर चुकते हैं, तब आप कहते हैं कि यह कैसे संभव हुआ कि मैंने क्रोध किया!
एक आदमी हत्या कर देता है, फिर कहता है, पछताता है कि यह कैसे संभव हुआ
कि मैंने हत्या की! इंस्पाइट ऑफ मी! वह कहता है, मेरे बावजूद यह हो गया! मैंने तो कभी ऐसा करना ही नहीं चाहा था।
उसे पता नहीं कि हत्या आकस्मिक नहीं है; पहले भीतर निर्मित होती है। लेकिन वह तल गहरा है और उस तल से हमारा कोई संबंध नहीं रह गया।
ध्यान कहता है, पहले तल का नाम बैखरी है, दूसरे तल का नाम मध्यमा है।
और उसके नीचे भी एक तल है जिसे ध्यान का विज्ञान पश्यंति कहता है। इसके पहले कि भीतर, ओंठों के पार, हृदय के कोने में शब्द निर्मित हो, उससे भी पहले शब्द का निर्माण होता है। लेकिन उस तीसरे तल का तो हमें साधारणतः कोई भी पता नहीं होता। उससे हमारा कोई संबंध नहीं होता। दूसरे तक हम कभी-कभी झांक पाते हैं, तीसरे तक हम कभी नहीं झांक पाते।
ध्यान का विज्ञान कहता है कि पहला तल बोलने का है; दूसरा तल सोचने का है; तीसरा तल दर्शन का है। पश्यंति का अर्थ हैः देखना। जहां शब्द देखे जाते हैं। मोहएमद कहते हैं कि मैंने कुरान देखी; सुनी नहीं। वेद के ऋषि कहते हैं--हमने ज्ञान देखा; सुना नहीं। मूसा कहते हैं--मेरे सामने टेन कमांडमेंट्स प्रकट हुए, दिखाई पड़े; सुने नहीं। यह तीसरे तल की बात है, जहां विचार दिखाई पड़ते हैं, सुनाई नहीं।
तीसरा तल भी ध्यान के हिसाब से मन का आखिरी तल नहीं है। चौथा एक तल है, जिसे ध्यान का विज्ञान "परा" कहता है। वहां विचार दिखाई भी नहीं पड़ते, सुनाई भी नहीं पड़ते। और जब कोई व्यक्ति देखने और सुनने से नीचे उतर जाता है, तब उस चौथे तल का पता चलता है। और उस चौथे तल के पार जो जगत है, वह ध्यान का जगत है। ये चार हमारी पर्तें हैं, इन चार दीवालों के भीतर हमारी आत्मा है। हम बाहर के परकोटे की दीवाल के बाहर ही जीते हैं। पूरे जीवन शब्दों की पर्त के साथ जीते हैं और स्मरण में नहीं आता कि खजाने बाहर नहीं हैं, बाहर सिर्फ रास्तों की धूल है। और आनंद बाहर नहीं है। बाहर आनंद की धुन भी सुनाई पड़ जाए तो बहुत। जीवन का सब कुछ भीतर है--जड़ों में, गहरे अंधेरे में दबा हुआ। ध्यान वहां तक पहुंचने का मार्ग है।
पृथ्वी पर बहुत से रास्तों से उस पांचवीं स्थिति में पहुंचने की कोशिश की जाती रही है। और जो व्यक्ति इन चार स्थितियों को पार करके पांचवीं गहराई में नहीं डूब पाता, उस व्यक्ति को जीवन तो मिला, लेकिन जीवन

को जानने की उसने कोई कोशिश नहीं की। उस व्यक्ति को खजाने तो मिले, लेकिन खजानों से वह अपरिचित रहा और रास्तों पर भीख मांगने में समय बिताया। उस व्यक्ति के पास वीणा तो थी जिससे संगीत पैदा हो सकता, लेकिन उसने उसे कभी छुआ नहीं। उसकी अंगुलियों का कभी कोई स्पर्श उसकी वीणा तक नहीं पहुंचा। हम जिसे सुख कहते हैं, धर्म उसे सुख नहीं कहता। है भी नहीं। हम भी भलीभांति जानते हैं। हमारा सुख करीब-करीब ऐसा है, मुझे एक छोटी सी कहानी याद आती है।
एक आदमी अपने मित्रों के पास बैठा है--बहुत बेचैन, बहुत परेशान। और ऐसा मालूम पड़ता है उसके भीतर कोई बहुत कष्ट, कोई भीतर वह बहुत पीड़ा को दबाए हुए है। अंततः एक मित्र उससे पूछता है, इतने परेशान हैं! बात क्या है? सिर में दर्द है? पेट में दर्द है?
उस आदमी ने कहा, नहीं, न सिर में दर्द है, न पेट में दर्द है। मेरे जूते बहुत काट रहे हैं। बहुत तंग हैं जूते।
उस मित्र ने कहा, तो जूतों को निकाल दें। और अगर इतने तंग जूते हैं कि इतना परेशान कर रहे हैं, तो थोड़े ठीक जूते खरीद लें।
उस आदमी ने कहा, नहीं, यह न हो सकेगा। मैं वैसे ही बहुत मुसीबत में हूं। पत्नी मेरी बीमार है। लड़की ने, न चाहता था जिस व्यक्ति से, उससे शादी कर ली। लड़का शराबी है, जुआरी है। और मेरी हालत दिवाले के करीब है। नहीं, मैं वैसे ही बहुत दुख में हूं।
उन मित्रों ने कहा, आप पागल हैं, वैसे ही बहुत दुख में हैं तो इस जूते
को तो बदल ही लें।
उस आदमी ने कहा, इस जूते के साथ ही मेरा एकमात्र सुख रह गया है।
तब तो वे बहुत चकित हुए। उन्होंने कहा, यह सुख किस प्रकार का है!
उस आदमी ने कहा, मैं इतनी मुसीबतों में हूं। दिन भर यह जूता मुझे काटता है, सांझ जब मैं इस जूते को उतारता हूं तो मुझे बड़ी राहत मिलती है। एक ही सुख मेरे पास बचा है, वह यह कि सांझ जब घर जाकर मैं इस जूते को उतारता हूं तो बड़ी रिलीफ, बड़ी राहत मिलती है। बस एक ही सुख मेरे पास है। और तो दुख ही दुख हैं। इस जूते को मैं नहीं बदल सकता हूं।
जिसे हम सुख कहते हैं, वह तंग जूते से ज्यादा सुख नहीं है, रिलीफ से ज्यादा सुख नहीं है। जिसे हम सुख कहते हैं, वह थोड़ी सी देर के लिए किसी तनाव से मुक्ति है; नकारात्मक है, निगेटिव है।
एक आदमी थोड़ी देर के लिए शराब पी लेता है और सोचता है कि सुख में है।
एक आदमी थोड़ी देर के लिए सेक्स में उतर जाता है और सोचता है कि सुख में है।
एक आदमी थोड़ी देर के लिए संगीत सुन लेता है और सोचता है कि सुख में है। एक आदमी बैठ कर गपशप कर लेता है, हंसी-मजाक कर लेता है, हंस लेता है और सोचता है कि सुख में है। ये सारे सुख तंग जूते को सांझ उतारने से भिन्न नहीं हैं। इनका सुख से कोई भी संबंध नहीं है।
सुख एक पाजिटिव, एक विधायक स्थिति है, नकारात्मक नहीं। सुख छींक जैसी चीज नहीं है कि आपको छींक आ जाती है और पीछे थोड़ी राहत मिलती है, क्योंकि छींक परेशान कर रही थी। वह एक नकारात्मक चीज नहीं है कि एक बोझ मन से उतर जाता है और पीछे अच्छा लगता है। सुख एक विधायक अनुभव है।
लेकिन बिना ध्यान के वैसा विधायक सुख किसी को अनुभव नहीं होता है। और जैसे-जैसे आदमी सभ्य और शिक्षित हुआ है, वैसे-वैसे ध्यान से दूर हुआ है। सारी शिक्षा, सारी सभ्यता आदमी को, दूसरों से कैसे संबंधित हों, यह तो सिखा देती है, लेकिन अपने से कैसे संबंधित हों, यह नहीं सिखाती।
समाज को कोई प्रयोजन भी नहीं है कि आप अपने से संबंधित हों। समाज चाहता है आप दूसरों से संबंधित हों, ठीक से, कुशलता से, बात पूरी हो जाती है। आप कुशलता से काम करें, बात पूरी हो जाती है। समाज आपको एक फंक्शन से ज्यादा नहीं मानता। अच्छे दुकानदार हों, अच्छे नौकर हों, अच्छे पति हों, अच्छी मां हों, अच्छी पत्नी हों, बात समाप्त हो गई। आप से समाज को कोई लेना- देना नहीं है। इसलिए समाज की सारी शिक्षा उपयोगिता की है, यूटिलिटी की है। समाज सारी शिक्षा ऐसी देता है, जिससे कुछ पैदा हो।

आनंद से कुछ भी पैदा होता नहीं दिखाई पड़ता। आनंद कोई कमोडिटी नहीं है,
जो बाजार में बिक सके। आनंद कोई ऐसी चीज नहीं है, जिसे रुपये में भंजाया जा सके। आनंद कोई ऐसी चीज नहीं है, जिसे बैंक बैलेंस में जमा किया जा सके। आनंद कोई ऐसी चीज नहीं है, जिसका कोई भी मूल्य, जिसकी कोई भी बाजार में कीमत हो सके। इसलिए समाज को आनंद से कोई प्रयोजन नहीं है। और कठिनाई यही है कि आनंद भर एक ऐसी चीज है, जो व्यक्ति के लिए मूल्यवान है, बाकी कुछ भी मूल्यवान नहीं है। लेकिन जैसे-जैसे आदमी सभ्य होता है, यूटिलिटेरियन होता है--सब चीजों की उपयोगिता होनी चाहिए।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, ध्यान से क्या मिलेगा? शायद वे सोचते होंगे--रुपये मिलें, मकान मिले, कोई पद मिले।
ध्यान से न पद मिलेगा, न रुपये मिलेंगे, न मकान मिलेगा। ध्यान कोई उपयोगिता नहीं है। लेकिन जो आदमी सिर्फ उपयोगी चीजों की तलाश में घूम रहा है, वह आदमी सिर्फ मौत की तलाश में घूम रहा है। जीवन की भी कोई उपयोगिता नहीं है। जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, वह परपजलेस है। जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, उसकी बाजार में कोई कीमत नहीं है।
प्रेम की कोई कीमत है बाजार में? कोई कीमत नहीं है। आनंद की कोई कीमत है? कोई कीमत नहीं है। प्रार्थना की कोई कीमत है? कोई कीमत नहीं है। ध्यान की, परमात्मा की, इनकी कोई भी कीमत नहीं है। लेकिन जिस जिंदगी में अनुपयोगी, नॉन-यूटिलिटेरियन मार्ग नहीं होता, उस जिंदगी में सितारों की चमक भी खो जाती है। उस जिंदगी में फूलों की सुगंध भी खो जाती है। उस जिंदगी में पक्षियों के गीत भी खो जाते हैं। उस जिंदगी में नदियों की दौड़ती हुई गति भी खो जाती है। उस जिंदगी में कुछ भी नहीं बचता, सिर्फ बाजार बचता है। उस जिंदगी में काम के सिवाय कुछ भी नहीं बचता। उस जिंदगी में तनाव और परेशानी और चिंताओं के सिवाय कुछ भी नहीं बचता।
और जिंदगी चिंताओं का एक जोड़ नहीं है। लेकिन हमारी जिंदगी चिंताओं का
एक जोड़ है। ध्यान हमारी जिंदगी में उस डायमेंशन, उस आयाम की खोज है, जहां हम बिना प्रयोजन के सिर्फ होने मात्र में, जस्ट टु बी, होने मात्र में आनंदित होते हैं। और जब भी हमारे जीवन में कहीं से भी सुख की कोई किरण उतरती है, तो वे वे ही क्षण होते हैं जब हम खाली, बिना काम के--समुद्र के तट पर या किसी पर्वत की ओट में या रात आकाश के तारों के नीचे या सुबह उगते सूरज के साथ या आकाश में उड़ते हुए पक्षियों के पीछे या खिले हुए फूलों के पास--कभी जब हम बिना काम, बिल्कुल बेकाम, बिल्कुल व्यर्थ, बाजार में जिसकी कोई कीमत न होगी, ऐसे किसी क्षण में होते हैं, तभी हमारे जीवन में सुख की थोड़ी सी ध्वनि उतरती है।
लेकिन यह आकस्मिक, एक्सिडेंटल होती है।
ध्यान व्यवस्थित रूप से इस किरण की खोज है। यह कभी होती है। यह ट्यूनिंग, कभी हम विश्व के और हमारे बीच संगीत का सुर बंध जाता है--कभी। ठीक वैसे ही जैसे कोई बच्चा सितार को छेड़ दे और कोई राग पैदा हो जाए आकस्मिक। ध्यान व्यवस्थित रूप से जीवन में उस द्वार को बड़ा करने का नाम है, जहां से आनंद की किरण उतरनी शुरू होती है, जहां से हम पदार्थ से छूटते हैं और परमात्मा से जुड़ते हैं।
मेरे देखे, ध्यान से ज्यादा बिना कीमत की कोई चीज नहीं है। और ध्यान
से ज्यादा बहुमूल्य भी कोई चीज नहीं है। और आश्चर्य की बात यह है कि यह जो ध्यान, प्रार्थना--या हम कोई और नाम दें--यह इतनी कठिन बात नहीं है, जितना लोग सोचते हैं। कठिनाई अपरिचय की, कठिनाई न जानने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। जैसे हमारे घर के किनारे पर ही कोई फूल खिला हो और हमने खिड़की न खोली हो; जैसे बाहर सूरज खड़ा हो और हमारे द्वार बंद हों; जैसे खजाना सामने पड़ा हो और हम आंख बंद किए बैठे हों--ऐसी कठिनाई है। अपने ही हाथ से अपरिचय के कारण कुछ हम खोए हुए बैठे हैं, जो हमारा किसी भी क्षण हो सकता है। ध्यान प्रत्येक व्यक्ति की क्षमता है। क्षमता ही नहीं, प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार भी है। परमात्मा जिस दिन व्यक्ति को पैदा करता है, ध्यान के साथ ही पैदा करता है।

बच्चों में बूढ़ों से ज्यादा ध्यान होता है। इसलिए बच्चों की जिंदगी में बूढ़ों से ज्यादा आनंद की पुलक होती है। इसलिए बच्चों की आंखों में कुछ अलौकिक! बच्चे बोलते भी हैं तो जैसे मौन भीतर से बोलता है। बूढ़े बोलते भी हैं तो मौन से बचने के लिए। दो आदमी पास बैठते हैं, तो इसलिए जल्दी से बात शुरू कर देते हैं कि कहीं मौन न घेर ले, कहीं चुप्पी बीच में न आ जाए। अन्यथा कठिनाई होगी, फिर उस मौन को तोड़ना कठिन पड़ेगा। अगर पति पत्नी से थोड़ी देर न बोले तो खतरा है, पत्नी न बोले तो खतरा है। मौन थोड़ी देर आ जाए तो डर है, क्योंकि बीच में फिर मौन को तोड़ना बहुत मुश्किल हो जाएगा, उसे पिघलाना मुश्किल होगा। हम उसे आने ही नहीं देते। हम बोल-बोल कर मौन से बचते रहते हैं।
बच्चे अगर बोलते हैं तो उनसे मौन बोलता है। बूढ़े अगर बोलते हैं तो सिर्फ मौन से एक एस्केप, एक पलायन है। लेकिन हम बच्चों को जल्दी बूढ़े बनाने की कोशिश में लग जाते हैं। जब तक वे बच्चे रहते हैं, तब तक भरोसे के योग्य नहीं रहते। जब तक वे बच्चे रहते हैं, तब तक हमारी काम की दुनिया के हिस्से नहीं रहते। हम शीघ्र ही, उन्हें जो परमात्मा से मिला है, उसे तोड़ने- मोड़ने और अपने रास्तों में लगाने में तत्पर हो जाते हैं। इसके पहले कि बच्चा जान पाए कि क्या उसके पास था, हम उसे करीब-करीब उससे अपरिचित कर देते हैं; और उससे परिचित कर देते हैं, जिससे वह जिंदगी भर परिचित रहेगा और अपनी मूल संपदा से अपरिचित रह जाएगा।
ध्यान हमारा स्वभाव है। उसे हम जन्म के साथ लेकर पैदा होते हैं। और इसलिए बाद में ध्यान से परिचित होना कठिन नहीं है। क्योंकि कुछ जो हमारा है, जिसे हम केवल भूल गए हैं, विस्मरण किया है, उसे हम पुनः याद कर लेते हैं। स्मरण से ज्यादा नहीं है ध्यान--एक रिमेंबरिंग। कुछ था हमारे पास, जिसे हम भूल गए हैं, और पुनः याद कर लेते हैं। इसलिए कठिन नहीं है। और प्रत्येक व्यक्ति ध्यान में प्रविष्ट हो सकता है।
ध्यान-मंदिर से एक ऐसे स्थान का प्रयोजन है, जहां किसी भी धर्म का और किसी भी मार्ग का और किसी भी तरह से सोचने वाला व्यक्ति वैज्ञानिक रूप से, साइंटिफिक विधि से ध्यान से परिचित हो सके और ध्यान में प्रवेश कर सके। इतना ही नहीं, ध्यान के मार्ग पर जो बाधाएं हैं, उनसे परिचित हो सके, वैज्ञानिक ढंग से।
और ध्यान रहे, मैं जोर देकर कह रहा हूं--वैज्ञानिक ढंग से! क्योंकि मंदिरों की कोई कमी नहीं है, मस्जिदों की कोई कमी नहीं है, गुरुद्वारे बहुत हैं। लेकिन गुरुद्वारों की, मस्जिदों की, मंदिरों की भाषा और आज के आदमी के बीच कोई संबंध नहीं रह गया है। ऐसा नहीं कि मंदिर जो बोलते हैं वह गलत बोलते हैं। और ऐसा भी नहीं कि मस्जिद में जो कहा जाता है वह गलत है। और ऐसा भी नहीं कि गुरुद्वारा जो संदेश लिए बैठा है वह गलत है। वे संदेश सब ठीक हैं, लेकिन भाषा उनकी इतनी पुरानी पड़ गई है कि उससे आज के आदमी का कोई संबंध नहीं है। आज कोई संबंध हो भी नहीं सकता। आज के आदमी की सारी शिक्षण की व्यवस्था वैज्ञानिक है। और मंदिर और मस्जिद और गुरुद्वारे के सोचने के सारे ढंग पूर्व-वैज्ञानिक हैं, प्रि-साइंटिफिक हैं। उनसे आज के आदमी का कहीं भी कोई तालमेल नहीं हो पाता।
ध्यान-केंद्र से या ध्यान-मंदिर से मेरा प्रयोजन हैः वैज्ञानिक विधियों से, वैज्ञानिक व्यवस्था से आधुनिक आदमी के मन को ध्यान से न केवल बौद्धिक रूप से परिचित कराया जा सके, बल्कि प्रयोगात्मक, एक्सपेरिमेंटली भी उसे प्रवेश दिया जा सके। और बौद्धिक रूप से ध्यान से परिचित होना बहुत कठिन है, प्रयोगात्मक रूप से परिचित होना बहुत सरल है। कुछ चीजें हैं जिन्हें हम करके ही जान सकते हैं; जिन्हें हम जान कर कभी नहीं कर सकते। असल में उन्हें हम जान ही नहीं सकते, जब तक कि हम कर न लें। एक वैज्ञानिक व्यवस्था, जिससे प्रत्येक व्यक्ति आज की आधुनिकतम व्याख्या, भाषा, प्रतीकों में समझ पा सके। न केवल समझ पा सके, बल्कि कर भी सके, और ध्यान से परिचित भी हो सके।
इसमें दो-तीन बातें ख्याल में ले लेने जैसी हैं। कई बार बहुत छोटी सी चीजें हमारे ख्याल में नहीं होती हैं।

डा. पर्ल्स एक अमेरिकन मनोवैज्ञानिक है। उसने एक बहुत छोटी सी बात पर जिंदगी भर प्रयोग किया। एक बहुत छोटी बात, जिसका हमें ख्याल भी नहीं हो सकता। उसका कहना है कि जो आदमी भोजन ठीक से चबा कर नहीं करता, उस आदमी की जिंदगी में हिंसा ज्यादा होगी, वह ज्यादा वायलेंट होगा। जो आदमी भोजन ठीक से चबा कर करता है, उसकी जिंदगी में हिंसा कम हो जाएगी।
यह बहुत अजीब सी बात मालूम पड़ती है। चबाने से और हिंसा का क्या संबंध
हो सकता है! लेकिन पर्ल्स की तीस साल की खोज यही है कि सभी जानवरों की हिंसा उनके दांतों से बंधी होती है। सभी जानवर दांत से हिंसा करते हैं, जब भी हिंसा करते हैं तो दांत से ही करते हैं। आदमी भी, उसकी हिंसा भी उसके दांतों में केंद्रित है। लेकिन आदमी ने जो भोजन विकसित किए हैं, उनमें उतनी हिंसा नहीं हो पाती। इसलिए उसके दांत की हिंसा उसके पूरे शरीर में फैल जाती है।
अब पर्ल्स ने पिछले दस वर्षों में, अनेक लोग जो वायलेंट थे, पागल थे,
जो हिंसा बिना किए रह नहीं सकते थे, उनको सिर्फ भोजन ठीक से चबाने का प्रयोग करवाया। और पाया कि तीन महीने के प्रयोग में, जो आदमी बिना चीजों को तोड़े-फोड़े नहीं रह सकता था, जो आदमी किसी न किसी को मारे बिना नहीं रह सकता था, उस आदमी की हिंसा तिरोहित हो गई। फिर उसने दांतों और हिंसा और मनुष्य के व्यक्तित्व को पूरा का पूरा वैज्ञानिक आधारों पर खोजबीन की और उसकी बात बहुत दूर तक सच साबित हुई है।
आप प्रयोग करके देखें तो ख्याल में आएगा। एक पंद्रह दिन भोजन को इतना चबाएं कि जब तक वह लिक्विड न हो जाए, तब तक उसको भीतर न ले जाएं। और चौबीस घंटे आप स्मरण करें कि आपकी हिंसा में रोज फर्क पड़ता है या नहीं पड़ता है। और आप इक्कीस दिन के प्रयोग के बाद दंग हो जाएंगे कि आपके क्रोध में फर्क हो गया है। और क्रोध के लिए कुछ भी नहीं करना पड़ा। करना पड़ा कहीं कुछ और। और अगर आप सीधे क्रोध के लिए कुछ करेंगे तो कोई फर्क नहीं पड़ेगा। क्रोध दब जाएगा एक तरफ से, दूसरी तरफ से निकलना शुरू हो जाएगा।
आपको क्रोध आ जाए जोर से, तो अपनी टेबल के नीचे दोनों हाथ बांध कर नाखूनों को अपनी ही गद्दी में जोर से गड़ा लें--तीन बार, और मुट्ठी खोलें और छोड़ें और फिर क्रोध करके देखें। तो आप बहुत हैरान हो जाएंगे, तीन बार मुट्ठी को खोलने और बंद करने में वह ताकत खो गई जिससे आप क्रोध कर सकते थे। असल में नाखून और दांत हिंसा के केंद्र हैं। सारे जानवर नाखून और दांतों से हिंसा कर रहे हैं। और चूंकि आदमी के पास दांत कमजोर थे और नाखून कमजोर थे, इसलिए उसने हथियार बनाए जिनसे उसने दांतों और नाखूनों का काम लिया है। अगर हम आदमी के सारे हथियारों को देखें तो हम पाएंगे, या तो वे दांत का विस्तार हैं या नाखून का।
ध्यान-केंद्र पर मैं इस तरह की सारी की सारी वैज्ञानिक व्यवस्था करना चाहता हूं, जहां आपकी हिंसा, आपका क्रोध, आपकी चिंता, आपका तनाव, आपकी अनिद्रा, इनसोमेनिया, आपके चित्त पर आने वाले सारे विकार क्यों पैदा होते हैं, कैसे पैदा होते हैं, तो आपको पैदा करके भी बताया जा सके और कैसे विदा होते हैं, वह आपसे ही विदा करके भी बताया जा सके। यह नकारात्मक हिस्सा होगा ध्यान का कि आप में जो व्यर्थ का कचरा इकट्ठा है, वह कैसे अलग हो सके। और फिर विधायक रूप से ये मैंने चार सीढ़ियां कहीं--बैखरी, मध्यमा, पश्यंति, परा--इन चार सीढ़ियों में आपको भीतर कैसे उतारा जा सके, आप इनमें भीतर कैसे उतर जाएं। एक बार बाहर का कचरा फिंक जाए तो भीतर उतर जाना बड़ी ही सरल बात है। बहुत कठिन नहीं है। शायद इस जिंदगी में हम बहुत सी फिजूल की बातें सीखने में जितना समय नष्ट करते हैं, उससे बहुत कम समय में ध्यान की गति शुरू हो जाती है।
पीटर लिंक ने कहीं लिखा है कि एक आदमी नरक जाने के लिए जितनी मेहनत उठाता है, उससे बहुत कम मेहनत में स्वर्ग पहुंच सकता है।
हम क्रोध के लिए जितना श्रम करते हैं, उससे बहुत कम श्रम में हम ध्यान में उतर सकते हैं। हम दूसरे के साथ लड़ कर जितना श्रम करते हैं, उतना अगर अपने को बदलने के लिए करें, तो हम कभी के परमात्मा की प्रतिमा को अपने भीतर खोजने में सफल हो जाएं। हम बाहर के रास्तों पर जितना दौड़ते हैं, अगर उससे

सौवां हिस्सा भी हम भीतर के रास्ते पर जाएं, तो हम अपने पास पहुंच जाएं। और जो आदमी अपने पास नहीं पहुंचता, वह बाहर कितना ही दा.ैड़े, वह कहीं भी नहीं पहुंचेगा। जो अपने तक ही नहीं पहुंच पाया, वह कहीं और नहीं पहुंच सकता है। और जिसे अपने भीतर कोई शांति का संगीत नहीं मिला, उसे बाहर, वह जगत के कोने- कोने में घूम आए, नरक के अतिरिक्त कुछ भी मिलने वाला नहीं है। हम अपना नरक या अपना स्वर्ग अपने साथ लेकर चलते हैं।
इस ध्यान-मंदिर को एक वैज्ञानिक व्यवस्था; सांप्रदायिक जरा भी नहीं, किसी धर्म से बंधा हुआ जरा भी नहीं; और सब धर्मों के लिए खुला हुआ... । और प्रत्येक धर्म ने भी जो ध्यान के अलग-अलग प्रयोग खोजे हैं, उनकी भी क्या वैज्ञानिकता है, उस पर भी प्रयोग करने का उस केंद्र में ख्याल है।
कोई एक सौ बारह विधियां हैं सारे जगत में ध्यान की। और प्रत्येक विधि अदभुत है। और एक सौ बारह विधियों से आदमी परमात्मा तक पहुंच सकता है। उसमें एक-दूसरे से बिल्कुल विपरीत विधियां भी हैं। इसलिए एक विधि को मानने वाला दूसरी विधि को बिल्कुल गलत कहता है। लेकिन वे एक सौ बारह विधियां, सभी, व्यक्ति को ध्यान और शांति और आनंद और सत्य तक ले जाने का मार्ग बन जाती हैं।
इस ध्यान-केंद्र पर पूरी एक सौ बारह विधियों का प्रयोग करने का ख्याल है। और तब पहली बार पृथ्वी पर उस तरह का प्रयोग होगा, जिसमें आज तक पृथ्वी पर सारे ध्यान की प्रक्रियाओं को एक साथ, एक जगह... । हम एक भी व्यक्ति को वहां खोना न चाहेंगे। वह किसी भी मार्ग से जा सके, उस मार्ग पर ही उसे सुझाव दिए जा सकेंगे।
अब अजीब-अजीब विधियां हैं, जिनका आपने कभी सुना भी नहीं होगा नाम। एक-
दो विधि मैं आपसे कहना चाहूं।
तिब्बत में एक बहुत छोटी सी विधि है--बैलेंसिंग, संतुलन उस विधि का नाम है। कभी घर में खड़े हो जाएं सुबह स्नान करके, दोनों पैर फैला लें और ख्याल करें कि आपके बाएं पैर पर ज्यादा जोर पड़ रहा है कि दाएं पैर पर ज्यादा जोर पड़ रहा है। अगर बाएं पर पड़ रहा है तो फिर आहिस्ते से जोर को दाएं पर ले जाएं। दो क्षण दाएं पर जोर को रखें, फिर बाएं पर ले जाएं। एक पंद्रह दिन, सिर्फ शरीर का भार बाएं पर है कि दाएं पर, इसको बदलते रहें। और फिर यह तिब्बती प्रयोग कहता है कि फिर इस बात का प्रयोग करें कि दोनों पर भार न रह जाए, आप दोनों पैर के बीच में रह जाएं। और एक तीन सप्ताह का प्रयोग और जब आप बिल्कुल बीच में होंगे--भार न बाएं पर होगा न दाएं पर--जब आप बिल्कुल बीच में होंगे, तब आप ध्यान में प्रवेश कर जाएंगे। ठीक उसी क्षण में आप ध्यान में चले जाएंगे।
ऊपर से देखने पर लगेगा कि इतनी सी आसान बात! करेंगे तो आसान भी मालूम पड़ेगी और कठिन भी मालूम पड़ेगी। बहुत सरल मालूम पड़ती है। दो पंक्तियों में कही जा सकती है। लेकिन लाखों लोगों ने इस छोटे से प्रयोग के द्वारा परम आनंद को उपलब्ध किया है। जैसे ही आप बैलेंस होते हैं--न बाएं पर रह जाते, न दाएं पर रह जाते, जैसे ही दोनों के बीच में रह जाते हैं, वैसे ही आप पाते हैं कि वह बैलेंसिंग, वह संतुलन आपकी कांशसनेस का, चेतना का भी बैलेंसिंग हो गया। चेतना भी बैलेंस्ड हो गई, चेतना भी संतुलित हो गई। तत्काल तीर की तरह भीतर गति हो जाती है।
ऐसी एक सौ बारह विधियां हैं सारे जगत में। इन सारी एक सौ बारह विधियों
पर विस्तृत वैज्ञानिक व्यवस्था इस ध्यान-केंद्र में देना चाहता हूं। और न केवल आपको समझाया जा सके, बल्कि आपको करवाया जा सके। अगर एक विधि से न हो सके तो दूसरी विधि से करवाया जा सके। लेकिन हम आपको उस मंदिर से निराश न लौटने दें। क्योंकि एक सौ बारह ये चरम विधियां हैं, इससे ज्यादा हो नहीं सकतीं। अगर एक विधि काम नहीं करती, दूसरी करेगी; दूसरी नहीं करती, तीसरी करेगी। और आपकी विधि तत्काल खोज ली जा सकती है कि कौन सी विधि आप पर काम करेगी। आप पर कौन सी विधि काम करेगी, इसकी खोजने की साइंस भी, इसके खोजने का भी विज्ञान है।
और यदि हम इस समय देश के बड़े-बड़े नगरों में--और देश के बाहर भी--ध्यान
के ऐसे विज्ञान-मंदिर निर्मित कर सकें, तो मनुष्य-जाति के लिए, जो आज

सर्वाधिक पीड़ा और संताप से गुजर रही है और जिसे कोई मार्ग नहीं दिखाई पड़ता... क्योंकि जो-जो हमने सोचा था कि इससे सब ठीक हो जाएगा, उससे कुछ भी ठीक नहीं हुआ। सोचा था कि लोगों के पास भोजन ठीक होगा तो सब ठीक हो जाएगा। आज दुनिया में आधी दुनिया के पास भोजन बिल्कुल ठीक है। सोचा था लोगों के पास कपड़े होंगे, मकान होंगे, अच्छे रास्ते होंगे, दवा होगी, चिकित्सा होगी, बीमारियां कम होंगी। आज आधी दुनिया के पास सब है। एक बड़ी अदभुत घटना घटी है कि जिनके पास आज सब है, वे ही सर्वाधिक अशांत, बेचैन और परेशान हो गए। गरीब मुल्क एक अर्थ में सौभाग्यशाली हैं। भूखे मरते हुए मुल्क एक अर्थ में सौभाग्यशाली हैं। क्योंकि अभी भी उनकी आशा जीवित है। उन्हें ख्याल है कि समाजवाद आएगा, धन बढ़ेगा, धन बंटेगा, सब ठीक हो जाएगा। यह आशा भी उन मुल्कों की टूट गई, जहां यह सब ठीक हो गया है। अब वे बड़ी निराशा में, गहन निराशा में खड़े हो गए हैं। इतनी होपलेसनेस, इतनी आशारहितता कभी भी मनुष्य के इतिहास में पैदा नहीं हुई थी।
आज अमेरिका जितना आशाहीन है, उतना पृथ्वी पर कोई भी नहीं। और आज अमेरिका मनुष्य के इतिहास में पृथ्वी का सर्वाधिक संपन्न, सर्वाधिक सुखी--हमारे अर्थों में--सब कुछ जिसके पास है, और फिर भी अचानक अनुभव हो रहा है कि कुछ भी पास नहीं है। इतनी आशाहीन स्थिति का कारण एक है।
हमने सोचा था जिन बातों से मिलेगा सब, वे सब डिसइल्यूजनमेंट, वे सब भ्रम टूट गए। और अब हमें वापस लौट कर सुनना पड़ेगा बुद्ध को, कृष्ण को, क्राइस्ट को, मोहएमद को। क्योंकि उन्होंने बहुत-बहुत बार बहुत पहले यह कहा था कि सब भी मिल जाए मनुष्य को, लेकिन अगर स्वयं का अनुभव न मिले, तो कुछ भी मिलता नहीं है। लेकिन हमें उनकी बात ख्याल में नहीं आ सकी। नहीं आ सकती थी। क्योंकि बात बड़ी काल्पनिक मालूम पड़ती थी, बहुत यूटोपियन मालूम पड़ती थी। और जो लोग कहते थे--धन मिल जाए, मकान मिल जाए, उनकी बात बड़ी प्रैक्टिकल और व्यावहारिक मालूम पड़ती थी। इतिहास का मजाक कि जो लोग बहुत प्रैक्टिकल थे, वे बहुत यूटोपियन सिद्ध हुए; और जो लोग बहुत यूटोपियन थे, आज पृथ्वी पर वे ही सबसे ज्यादा प्रैक्टिकल सिद्ध होने के करीब हैं। लेकिन धर्म अब पुराने रास्तों से नहीं लौटाया जा सकता। अब धर्म नये
ही रास्तों से प्रवेश करेगा। उसके नये रास्ते वैज्ञानिक और तकनीकी होंगे। अब जैसे एक आदमी हिमालय जाता था। आज भी हम सोचते हैं--एक आदमी हिमालय जाए तो ध्यान में जा सकता है। लेकिन कभी हमने सोचा नहीं कि हिमालय किसलिए जाता था? जितना ताप कम हो जाए वातावरण में, उतना भीतर प्रवेश आसान हो जाता है। लेकिन कितने लोग हिमालय जा सकते हैं?
लेकिन बंबई में एक एयरकंडीशंड मेडिटेशन हॉल हो सकता है। कोई हिमालय जाने की जरूरत नहीं है। क्योंकि हिमालय पर जो ठंडक मिल सकती है, वह बंबई में भी उपलब्ध हो सकती है अब। अब हिमालय पर जाने की व्यर्थ की दौड़-धूप है। अब तो ठीक बंबई के बीच बाजार में भी उतनी ही शीतलता उपलब्ध हो सकती है, जितनी एक योगी को हिमालय की चोटी पर उपलब्ध होती थी। उसके आस-पास भी बर्फ फैलाया जा सकता है--अगर बर्फ से ही कुछ लाभ होना है तो बर्फ फैलाया जा सकता है। अगर ऊंचाई से कुछ लाभ होता है, जमीन के ग्रेविटेशन के कम होने से कुछ लाभ होता है, तो बंबई में भी ग्रेविटेशन कम किया जा सकता है। अगर मौन से लाभ हो सकता है, तो बंबई में भी साउंडप्रूफ इंतजाम किए जा सकते हैं।
और अधिकतम लोगों के लिए हिमालय की चोटी संभव नहीं। और अगर अधिक लोग पहुंच जाएं तो हिमालय की बर्फ भी पिघल जाएगी। अधिक लोग वहां नहीं पहुंचे हैं, तभी तक वह उपयोगी है। अधिक लोग वहां पहुंच जाएं तो वहां भी इतना ही उत्ताप पहुंच जाएगा, इतनी ही गर्मी पहुंच जाएगी। एवरेस्ट पर जिस दिन जाने का रास्ता सीधा होगा, उस दिन हम बस्तियां वहां भी बसा लेंगे।
आने वाले भविष्य में, मनुष्य जहां है, वहीं सारी टेक्नोलॉजी और साइंस
का उपयोग किया जा सकता है। और वहीं सारी व्यवस्था की जा सकती है, जो कि एक योगी को बड़ी तकलीफें उठा कर व्यवस्था करनी पड़ती थी। वह विज्ञान के द्वारा संभव हो गई। एक सामान्य आदमी के लिए भी सुलभ हो सकती है।
विज्ञान और टेक्नोलॉजी का पूरा प्रयोग करके ही इस मंदिर को, ध्यान के मंदिर को निर्मित करना है। यह ध्यान का मंदिर मंदिर सिर्फ इसी अर्थों में

होगा कि वह ध्यान का है, अन्यथा वह एक वैज्ञानिक प्रयोगशाला होगी। इस वैज्ञानिक प्रयोगशाला में मनुष्य ने जो-जो खोज की है आदमी के संबंध में, उसका पूरा उपयोग किया जाना चाहिए।
एक आदमी ध्यान करने आता है, लेकिन उसका ब्लडप्रेशर बढ़ा हुआ है। इस आदमी को ध्यान में ले जाना आसान नहीं है। इस आदमी को ध्यान में ले जाना कठिन है। इसके रक्तचाप की जो अधिकता है, वह इसके ध्यान में बाधा बनेगी। पुराने आदमी के पास रक्तचाप को नापने का कोई माध्यम नहीं था। लेकिन आज के ध्यान-मंदिर में रक्तचाप नापने का माध्यम हो सकता है। रक्तचाप को कम करने की व्यवस्था हो सकती है। और फिर ध्यान में ले जाने की सुविधा बनाई जा सकती है। हां, एक बार आदमी ध्यान में चला जाए तो रक्तचाप में जाना मुश्किल हो जाएगा। लेकिन रक्तचाप में डूबे हुए आदमी को ध्यान में जाना मुश्किल हो जाता है।
सारी दुनिया के योगियों ने अल्प-आहार पर जोर दिया है, कम खाने पर जोर दिया है। उपवास पर, अल्प-आहार पर, कम भोजन पर, सएयक-आहार पर सारी दुनिया के योगियों ने जोर दिया है। फिर भी उनके पास, अल्प-आहार क्या है, इसकी ठीक-ठीक जांच की कोई व्यवस्था नहीं थी, सिवाय अनुमान के। न उन्हें कैलोरी.ज का कुछ पता था, न उन्हें भोजन के तत्वों का कुछ पता था। इसलिए कई बार ऐसा हुआ कि अल्प-आहार के नाम पर जो चला, उससे नुकसान ही पहुंचा।
आज हमारे पास बहुत वैज्ञानिक व्यवस्था है कि एक आदमी को कितनी कैलोरी भोजन की जरूरत है। और हम यह तय कर सकते हैं कि उसकी कितनी कैलोरी कम हो जाए तो उसे ध्यान में आसानी हो जाएगी और कितनी कैलोरी ज्यादा हो जाए तो कठिनाई हो जाएगी।
अगर ज्यादा भोजन है तो ध्यान में कठिनाई हो जाएगी, क्योंकि ज्यादा भोजन ज्यादा नींद मांगता है। उसे पचाने के लिए उतनी ज्यादा नींद चाहिए। कम भोजन कम नींद मांगता है। और जितनी भीतर निद्रा कम पैदा होती हो उतना ध्यान का जागरण पैदा हो सकता है। ध्यान तो जागरण है। एक आदमी ध्यान करने बैठता है और ज्यादा भोजन करके बैठ जाता है तो फिर कठिनाई होगी।
लेकिन ज्यादा भोजन से मतलब सिर्फ पेट में ज्यादा चीजें चली जाएं, इससे नहीं है। क्योंकि हो सकता है एक आदमी ने बहुत शाक-सब्जी खा लिया हो, पेट पर तो वजन ज्यादा हो, लेकिन भोजन ज्यादा न हुआ हो। और एक आदमी ने थोड़ी सी ही मिठाई खाई हो, पेट पर तो वजन कम हो, लेकिन भोजन ज्यादा हो गया हो। और आमतौर से साधु-संन्यासी मिठाई खाते रहे, दूध पीते रहे, रबड़ी लेते रहे, इस बात का बिना ख्याल किए... लेकिन उसका कोई उपाय नहीं था, उसका कोई साफ ख्याल नहीं था। आज हमारे पास उपाय है।
एक आदमी कितना सोए, इस पर निर्भर करेगा कि उसकी ध्यान की गति कैसी हो सकेगी। दोनों बातें संबंधित हैं। अगर ध्यान ठीक हो जाए तो नींद ठीक हो जाएगी। लेकिन ध्यान को ठीक करना उतना आसान नहीं, जितना नींद को ठीक कर लेना आसान है। पहले नींद ठीक कर ली जाए तो ध्यान में गति बहुत आसान हो जाएगी।
अब लोगों के पास नींद ही नहीं है। वे रात भर सोए नहीं, सुबह ध्यान करने बैठ गए हैं! जो आदमी रात भर सोया नहीं है वह ध्यान में सिर्फ सोएगा। इसलिए मंदिरों में पूजा करते हुए, साधु को सुनते हुए लोग अगर सो जाते हैं तो बहुत हैरानी नहीं है। मैंने तो सुना है, कुछ डाक्टर सलाह देते हैं कि धर्मसभा में चले जाना चाहिए, अगर नींद न आती हो।
मैंने सुना है, एक बहुत बड़ा पादरी अपने एक मित्र को बार-बार कहता था कि तुम कभी मेरा व्याख्यान सुनने आओ। नहीं माना तो एक दिन वह मित्र सुनने गया। पादरी अच्छे से अच्छा जो बोल सकता था, बोला। बाहर जब दोनों निकलने लगे तो उसने अपने मित्र से पूछा कि कैसा लगा? तो उसने कहा, बहुत ही ताजगी देने वाला, रिफ्रेशिंग। पादरी के हृदय की धड़कन खुशी से बढ़ गई। उसने कहा, कौन सी बात तुएहें इतनी ताजगी देने वाली लगी? उसने कहा कि जब मेरी नींद खुली तो मन बड़ा ताजा था। इतनी तो मुझे, घर भी नींद आती है, तब भी इतनी ताजगी नहीं मिलती। मैं जरूर आया करूंगा। तुएहारा भाषण बहुत रिफ्रेशिंग था।

क्यों? आखिर मंदिर में, धर्मकथा में आदमी को नींद आ जाती है, बात क्या है?
बोर्डम, ऊब पैदा हो जाए, नींद आ जाती है। कोई चीज उबाने लगे, नींद आ जाती है। और नींद की कमी हो तो जल्दी ही कोई चीज उबाने लगती है।
जिनको नींद नहीं आती, वे मेरे पास आते हैं। वे कहते हैं, हमें नींद नहीं आती। ध्यान से शायद नींद आ जाए!
उन्हें पता नहीं, ध्यान से नींद जरूर ठीक हो जाएगी, लेकिन नींद का ठीक होना ध्यान में जाने के पहले बहुत जरूरी है। अन्यथा ध्यान में जाना मुश्किल हो जाएगा, कठिन हो जाएगा। कठिन इसलिए हो जाएगा कि चित्त को पहली जरूरत नींद की है। और जैसे ही विश्राम मिला, चित्त सो जाएगा। और ध्यान में जरूरत है विश्राम में भी जागे हुए होने की--रिलैक्स्ड एंड अवेयर। एक तरफ सब विश्राम हो और एक तरफ सब जागा हुआ हो, तभी कोई ध्यान में प्रवेश कर सकता है। और नींद का नियम यह है कि यहां हम विश्राम में हुए बाहर कि भीतर नींद आ गई। रिलैक्स हुए कि नींद आ गई। तो ध्यान में अक्सर लोग सो जाएंगे।
अब यह सारी व्यवस्था आज की जा सकती है। नींद नापी जा सकती है। उनके सपने नापे जा सकते हैं कि कितने सपने आपको आ रहे हैं। आपको भी पता नहीं होता, कितने सपने आ रहे हैं, कैसे सपने आ रहे हैं।
कल ही एक साधिका मेरे पास थी। ध्यान करना है उसे। मैंने उसके सपनों के बाबत पूछा। उसने कहा कि सपनों से क्या मतलब आपको! मुझे ध्यान करना है। मैंने उससे कहा कि मुझे पूछना बहुत जरूरी है, क्योंकि सपने ही मुझे बताएंगे कि तुएहें सच में ध्यान करना है या कुछ और करना है। उसने कहा, सपने में तो मुझे सिवाय कामवासना के और हिंसा के, हत्या के, आग लगा देने के--इस तरह के ही सपने आते हैं। तो मैंने कहा कि वही तुएहारा चित्त करना चाहता है। अभी ध्यान मुश्किल पड़ेगा। पहले तो तुएहारे सपनों को शुद्ध करना पड़ेगा।
जिस व्यक्ति को स्वयं को शुद्ध करना है, वह अगर अपने सपनों को भी शुद्ध न कर पाए तो स्वयं को शुद्ध नहीं कर पाएगा। सपने जैसी साधारण चीज भी अशुद्ध हो तो स्वयं का शुद्ध होना बहुत मुश्किल है। जिसके सपने भी अभी सात्विक न हो पाए हों, उसका सत्व सात्विक हो जाए, यह बहुत मुश्किल है। जिसके सपने अभी शांत न हो पाए हों, उसकी सत्ता शांत हो जाए, यह अभी बहुत मुश्किल है।
लेकिन आज से पहले सपने की जांचने की कोई सुविधा न थी। इस ध्यान-केंद्र में सपने के जांचने की पूरी व्यवस्था करना चाहता हूं। अब तो इंतजाम है। जैसे आपका कार्डियोग्राम लिया जाता है, वैसे ही आपके रात नींद के सपने का ग्राफ बन जाता है कि आपने कितनी देर सपने देखे, किस तरह के सपने देखे। वायलेंट थे, नॉन-वायलेंट थे, सेक्सुअल थे, नहीं थे सेक्सुअल, क्या था, सपने किस तरह के थे, इसकी काफी जानकारी ग्राफ दे देता है और कितना सपना देखा रात भर। क्योंकि यह जान कर आप हैरान होंगे कि सपनों के संबंध में जितनी जानकारी बढ़ी है, उतना यह प्रतीत हुआ है कि चित्त के भीतर भी वेव्ज हैं, तरंगें हैं। जब सपना चलता है तो तरंगें और तरह की होती हैं, जब सपना बंद होता है तो और तरह की होती हैं। और बड़े आश्चर्य की बात है कि गहरी नींद में जो तरंगों की स्थिति होती है, वही स्थिति ध्यान की तरंगों में भी होती है। ध्यान में जब कोई व्यक्ति होता है तो उसके मस्तिष्क की तरंगें वैसी ही होती हैं, जैसी तरंगें गहरी निद्रा में होती हैं। और जब कोई व्यक्ति सपने में होता है तो तरंगें वैसी ही होती हैं, जैसे जब कोई व्यक्ति चिंता में होता है। चिंता और सपनों का जोड़ है; गहरी निद्रा और ध्यान का जोड़ है।
यह सारी वैज्ञानिक व्यवस्था इस ध्यान-मंदिर में करने का ख्याल है। और प्रत्येक व्यक्ति को वैज्ञानिक रूप से सहायता पहुंचाई जा सके, यह दृष्टि। और मेरे देखे, आज मनुष्य को ध्यान की जितनी जरूरत है, उतनी किसी और चीज की जरूरत नहीं है; क्योंकि आज मनुष्य जितना अशांत है, उतना मनुष्य अशांत कभी भी नहीं था।
ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं। सोचना, विचारना; मान लेने की कोई भी जरूरत नहीं है। और यह ध्यान-मंदिर विश्वास करने वालों के लिए नहीं होगा,

प्रयोग करने वालों के लिए होगा। विश्वास करने वाले वैसे भी अब कहीं नहीं हैं, सिर्फ कहते हुए दिखाई पड़ते हैं लोग, कहीं कोई विश्वास करने वाला आदमी अब नहीं है! हर आदमी के रथ पर शल्य बैठा हुआ है।
एक छोटी सी कहानी और अपनी बात मैं पूरी कर दूं।
कर्ण ने अपने महायुद्ध में महाभारत के, जिस आदमी को सारथी चुना, वही उसकी हार का कारण बना। उसने जिस आदमी को सारथी चुना उसका नाम था शल्य। शल्य का अर्थ होता है--संदेह, शंका, संशय। और कर्ण का अर्थ आप जानते ही हैं। कर्ण का अर्थ होता है--कान। सब शंकाएं कान से प्रवेश करती हैं। शल्य को कर्ण ने सारथी चुन लिया और अर्जुन ने कृष्ण को सारथी चुना। सारे युद्ध के लिए निर्णायक, डिसीसिव यही बात हो गई। क्योंकि वह जो शल्य जो था, उसका नाम ही शल्य इसीलिए था कि वह बड़ा शंकालु आदमी था। कर्ण बहुत शक्तिशाली आदमी था। जो लोग जानते हैं, महाभारत जिनके सामने हुआ, उन सबका ख्याल था कि कर्ण से अर्जुन जीत न सकेगा। कर्ण महाशक्तिशाली था। कर्ण के पीछे सूर्य की शक्ति थी। अर्जुन जीत न पाएगा। लेकिन अंततः युद्ध में हुआ ऐसा कि अर्जुन जीता और कर्ण हारा। और तब जो जानते हैं वे कहते हैं, वह गलत सारथी को चुनने की वजह से कर्ण हारा। क्योंकि वह जो शल्य था, वह पूरे वक्त कर्ण को कहता रहा, अरे तू क्या जीतेगा अर्जुन से! वह पूरे वक्त उससे यही कहता रहा। वह अपना धनुष-बाण खींच रहा है और वह शल्य, उसका सारथी कह रहा है, क्यों मेहनत कर रहा है, तू क्या जीतेगा अर्जुन से! तेरी जीत बहुत मुश्किल है। एक यह था सारथी। और एक कृष्ण था सारथी अर्जुन के पास कि अर्जुन छोड़ कर गांडीव बैठ गया और कृष्ण ने पूरी गीता कही कि वह आदमी लड़े। क्योंकि कृष्ण ने कहा कि जो होना है वह पहले से निश्चित है। तुझे कुछ करना ही नहीं है; तू सिर्फ निमित्त है। यह जो शल्य मिल गया कर्ण को, यह जो शंका मिल गई उसके मन को, वह उसे डुबाने वाली हो गई।
आज तो हर आदमी का सारथी शल्य है। कोई पहचानता हो, न पहचानता हो, संदेह
आज हर आदमी के साथ खड़ा है। इसलिए जो विश्वास, संदेह के अभाव में प्रचारित किए गए थे, वे अब काम के नहीं हैं। अब तो पहले शल्य की हत्या करनी पड़े, तब कहीं व्यक्ति के भीतर की चेतना पर कोई परिणाम लाया जा सकता है। और इस शल्य की हत्या बिना विज्ञान के नहीं हो सकती। इसलिए मैं इस ध्यान-केंद्र में आपके शल्य की हत्या विज्ञान के द्वारा करना चाहता हूं।
विश्वास के द्वारा अब नहीं होगा। मेरे यह कहने से कि आप मान लें, आप मानेंगे नहीं। मानने का अब कोई उपाय नहीं रहा। वह वक्त गया, वह समय बीत गया, जब लोग मान लेते थे। अब वह समय कभी भी नहीं लौट सकता। वह मनुष्य-जाति का बचपन सदा के लिए खो गया। अब आदमी प्रौढ़ है। और इस प्रौढ़ आदमी के पास जो संदेह है, उस संदेह को अगर हम वैज्ञानिक प्रयोग से नष्ट न कर सकें, तो मनुष्य की जिंदगी में हम कोई भी क्रांति लाने में सफल नहीं हो सकते हैं। इसलिए इस ध्यान-मंदिर को मैं एक वैज्ञानिक मंदिर कहता हूं, जहां हम ध्यान को, धर्म को वैज्ञानिक मार्ग से मनुष्य तक पहुंचाने का प्रयास कर सकते हैं।
मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं।
और अंत में सबके भीतर बैठे प्रभु को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

हसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानम् तीसरा प्रवचन

ध्यानः अंतस अनुभूति

प्रश्नः मैं थोड़ी साधना करती हूं, खास कर उसके बारे में मुझे पूछना है।
साधना करेगी फिर तो पूछ ही न सकेगी। साधना इतनी और उतनी नहीं होती। मात्रा होती नहीं। यह हमारी बड़ी भ्रांति है। क्योंकि हम चीजों की दुनिया से परिचित हैं, इसलिए हमेशा क्वांटिटी के हिसाब से सोचते हैं। चीजों की दुनिया से परिचित होने के कारण यह भ्रांति होती है, क्योंकि चीजों में तो क्वांटिटी है और भीतर सिर्फ क्वालिटी है, क्वांटिटी नहीं है! भाव की दुनिया में कोई मात्रा नहीं है। इसलिए हम ऐसा नहीं कह सकते कि हम किसी को कम प्रेम करते हैं। या तो करते हैं या नहीं करते हैं। कम और ज्यादा प्रेम नहीं हो सकता। हो ही नहीं सकता। क्योंकि वहां नापने का उपाय ही नहीं है। या तो हम प्रेम करते हैं या हम नहीं करते हैं। कम प्रेम धोखे की बात है। ऐसे ही या तो हम साधना में जाते हैं या नहीं जाते हैं। कम साधना धोखे की बात है। लेकिन चूंकि हम वस्तुओं की दुनिया में ही जीते हैं और हमारा सारा चिंतन वहां से बनता है, तो वहां मात्राएं हैं। और उन्हीं मात्राओं को हम अध्यात्म में भी ले आते हैं, तब बड़ी भूल हो जाती है, तब बड़ी भूल हो जाती है। अब यह, इसी तरह हम सीढ़ियां ले आते हैं अध्यात्म की दुनिया में। वहां सिर्फ छलांग है, वहां कोई सीढ़ियां नहीं हैं। लेकिन अगर सीढ़ियां न हों तो गुरु और शिष्य का क्या हो? गुरु वह है जो आखिरी सीढ़ी पर खड़ा है, शिष्य वह है जो पहली सीढ़ी पर खड़ा है। अध्यात्म की दुनिया में इसलिए शिष्य और गुरु नहीं हो सकते। बिल्कुल नहीं हो सकते। वह सब हमारी वस्तुओं की दुनिया से ली गई उधार बातें हैं। जहां मजदूर है और मालिक है, जहां शिष्य है और गुरु है, कोई सिखाने वाला है, कोई सीखने वाला है। अध्यात्म की दुनिया में न कोई सिखाने वाला है, न कोई सीखने वाला है। सीखने की एक छलांग है। ए जंप इनटु लर्निंग। प्रोसेस नहीं है लर्निंग वहां; इसलिए क्रम नहीं है, ग्रेड नहीं है।
लेकिन शोषण का क्या होगा? अगर ग्रेड न हो, तोशोषण करना बहुत मुश्किल है। इसलिए हम ग्रेड बनाते हैं। हम कहते हैं--यह अभी नंबर एक की सीढ़ी पर है, यह नंबर दो की सीढ़ी पर है, यह नंबर तीन, मैं नंबर पांच की सीढ़ी पर हूं।
मैं गया, महीपाल जी, एक बहुत मजेदार मामला हुआ। एक संन्यासी हैं। एक बड़ा आश्रम है उनका और हजारों उनके शिष्य हैं। वे एक बड़े तख्त पर बैठे हैं। उनके बगल में एक छोटा तख्त रखा हुआ है। उस पर एक दूसरे संन्यासी बैठे हुए हैं। और बाकी संन्यासी नीचे बैठे हुए हैं। तो मैं गया तो उन्होंने कहा कि आप जानते हैं, ये कौन बैठे हुए हैं?
मैंने कहा, मैं नहीं जानता।
उन्होंने कहा कि ये चीफ जस्टिस थे हाईकोर्ट के। अब संन्यासी हो गए। लेकिन बड़े विनम्र हैं, कभी मेरे साथ तख्त पर नहीं बैठते। हमेशा छोटे तख्त पर नीचे बैठते हैं।
मैंने कहा, ये तो विनम्र हैं, लेकिन आप कौन हैं? क्योंकि आप हमेशा इनके साथ बड़े तख्त पर बैठते हैं। अगर ये विनम्र हैं तो आप कौन हैं? और मैंने कहा, ये भी छोटे तख्त पर बैठते हैं। इनसे भी नीचे लोग बैठे हुए हैं। ये भी नीचे उनके साथ नहीं बैठते हैं।
मैंने कहा, ये आपके मरने की राह देख रहे हैं। जब आप यह तख्त खाली करोगे, ये ऊपर बैठ जाएंगे। हायरेरकी चलेगी। चीफ डिसाइपल हैं ये आपके, जब आप मरेंगे तो ये गुरु हो जाएंगे। और ये नीचे जो बैठे हैं, इनमें जो सबसे ज्यादा काएपटीटिव होगा, एंबीशस होगा, वह इस तख्त पर कब्जा कर लेगा। फिर यह गुरु उसके लिए कहेगा कि यह बहुत विनम्र है। विनम्र वह इसीलिए कह रहा है कि वह मेरे अहंकार की तृप्ति करवा रहा है, तो विनम्र है। अगर वह भी उचक कर इसी तख्त पर बैठ जाए, तो फिर विनम्र नहीं रह जाएगा, क्योंकि मेरे अहंकार को चोट पहुंचनी शुरू हो गई।

और फिर मैंने कहा कि आप यह क्यों बताते हैं कि यह आदमी हाईकोर्ट का चीफ जस्टिस था? संन्यासी का मतलब ही है कि जो यह था, अब नहीं है। यह कोई भी रहा हो, चमार रहा हो, हाईकोर्ट का जस्टिस रहा हो, न रहा हो, इससे कोई वास्ता नहीं है, यह छलांग लगा गया वहां से। अब यह बताने की क्या जरूरत है? यह भी हम इसलिए बताते हैं कि यह कोई साधारण संन्यासी नहीं है--यानी यह मत समझना कि यह कोई चमार था, कि कोई सड़क साफ करता था--यह हाईकोर्ट का चीफ जस्टिस था! तब तो फिर यह कहीं छोड़ कर गया नहीं है, सब वही का वही वापस है।
सारी दुनिया में अध्यात्म को जो नुकसान पहुंचा है, वह ग्रेडेशन से पहुंचा है। क्योंकि तब दुनिया में जो सीढ़ियां थीं, पद थे, पदवियां थीं, वे सब वहां पहुंच गईं। नाम बदल गए, बाकी वे सब वहां पहुंच गईं, वहां नये नाम से वे खड़ी हो गईं। यहां नेता था, अनुयायी था, तो वहां गुरु और शिष्य हो गया। यहां मालिक था, मजदूर था, तो वहां सिखाने वाला और सीखने वाला हो गया। लेकिन जहां भी वर्ग है, वहां शोषण है। वर्ग अर्थात शोषण। किसी भी भांति का वर्ग होगा, तोशोषण होगा। और जहां शोषण नहीं है वहां वर्ग को बनाने का उपाय नहीं है। उसे बनाएंगे कैसे?
तो मेरी अपनी समझ यह है कि शायद जमीन से और तरह के वर्ग मिटना तो बहुत असंभव है, कम से कम अध्यात्म का वर्ग तो नहीं होना चाहिए। यानी वह एकमात्र पासिबिलिटी है, जहां हम वर्गविहीनता लाएं। लेकिन वहां बहुत सख्त वर्ग है, जितना कि धन की दुनिया में भी सख्त वर्ग नहीं है। वहां बहुत सख्त वर्ग है। हमारी एंबीशन, हमारी ईगो, हमारा अहंकार कितने तरह के रूप लेता है, इसको कहना बहुत कठिन है। और अहंकार जब भी कोई रूप लेता है तो उसके सोचने का ढंग सदा ही प्रोसेस में होता है, क्योंकि अहंकार छलांग नहीं लगा सकता, छलांग में वह मर जाता है। वह एक-एक कदम बढ़ता है। और एक-एक कदम वह इसीलिए बढ़ता है कि जब वह एक कदम को मजबूत कर लेता है, तब पीछे का कदम छोड़ता है। छलांग का मतलब यह है कि अगला कदम अनिश्चित है--पड़े न पड़े, गड्ढा हो, एबिस हो। छलांग का मतलब यह है कि अगला कदम निश्चित नहीं किया, और कूद गए हैं। बढ़ने का मतलब यह है कि अगला कदम ठीक से निश्चित कर लिया, पैर अच्छी तरह जमा लिया, तब पिछला कदम उठाया। यानी जब हम भविष्य को सुनिश्चित कर लेते हैं तब वर्तमान को छोड़ते हैं। यह तो क्रम से सोचने का ढंग है। छलांग से सोचने का ढंग यह है कि हम वर्तमान को तो छोड़ ही देते हैं और भविष्य को अनिश्चित रहने देते हैं। इतना अभय हो, तो ही अध्यात्म में गति है। उस भय के कारण और इसलिए एक-एक कदम निश्चित हो सकता है ज्यादा से ज्यादा, इसलिए आगे की सीढ़ियां जब हम बिल्कुल पक्की मजबूत बना लेते हैं, तब हम उस पर चढ़ जाते हैं, पीछे की सीढ़ी छोड़ते हैं। यह छोड़ना नहीं है, यह सिर्फ बढ़ना है। इस सीढ़ी में पिछली सीढ़ी इंप्लाइड है।
एक आदमी के पास दस हजार रुपये हैं, वह दस हजार छोड़ता है, पचास हजार पा लेता है। दस हजार वह छोड़ता नहीं है। यह पचास हजार में चालीस हजार धन दस हजार जुड़े हुए हैं। वह सिर्फ चालीस हजार पाता है, दस हजार छोड़ता नहीं है। पिछली सीढ़ी हमेशा अगली सीढ़ी में समा लेता है।
तो अहंकार जो है वह ऐसा चलता है जैसे सांप चलता है। आगे जब जाता है तो अपने पूरे सारे शरीर को सिकोड़ कर आगे ले आता है। तो अहंकार इसलिए कभी कुछ नहीं छोड़ता, अपने सारे पास्ट को सदा सिकोड़ कर आगे खींचता रहता है। इसलिए अहंकार बेसिकली कभी क्रांति से नहीं गुजरता, वह वही का वही रहता है, सिर्फ मॉडीफाइड होता है। नई-नई सीढ़ियों पर नये-नये रंग लेता चला जाता है। और हर नई सीढ़ी पर अकड़ नई उसे उपलब्ध हो जाती है, वह आनंद से भर जाता है। अध्यात्म की भी ऐसी अकड़ है। लेकिन ऐसा अध्यात्म अध्यात्म ही नहीं हो सकता। मेरी दृष्टि में, अध्यात्म सदा ही एक छलांग है, ए जंप--जंप इनटु दि अननोन। और अननोन के हम ग्रेडेशंस नहीं कर सकते, नहीं तो वह नोन हो जाएगा। अननोन का हम नक्शा नहीं बना सकते, नहीं तो वह नोन हो जाएगा। अननोन में हम यह भी नहीं कह सकते कि कुछ मिलेगा कि खोएगा। अगर इतना भी पक्का हो जाए, तो फिर वह अननोन नहीं रह जाएगा। तो नोन से अननोन में, ज्ञात से अज्ञात में जो छलांग है, वह हमारा यह चित्त जो क्वांटिटी, ग्रेडेशंस, ग्रेजुअलनेस,

सीढ़ियां, क्रम, इस भाषा में सोचता है--कम और ज्यादा--वह कभी नहीं लगा पाता। उससे बहुत सावधान रहने की जरूरत है।
इसलिए जब तक हम नहीं हैं तब तक यह जानना उचित है कि साधक नहीं हैं। कम साधक जानना खतरनाक है। नहीं हैं...
मैं आपको प्रेम नहीं करता, तो यह जानना बहुत ही ठीक है कि मैं प्रेम नहीं करता। कम से कम यह सच तो है। और न प्रेम करने की भी अपनी पीड़ा है, जो मुझे पकड़ेगी। जो मुझे काटेगी दिन-रात, कांटे की तरह चुभेगी कि मैं प्रेम नहीं करता। मैंने प्रेम किया ही नहीं। यह इतना घना होता जाएगा कि मुझे प्रेम की छलांग लेनी पड़ेगी एक दिन। यह इतनी चुभन गहरी हो जाएगी कि जिस जमीन पर मैं खड़ा हूं, वह आग हो जाएगी। मुझे उससे छलांग लगानी पड़ेगी, क्योंकि वहां खड़ा रहना असंभव हो जाएगा।
लेकिन हमारा कनिंग है मन। वह कहता है, नहीं, ऐसा नहीं है कि मैं प्रेम नहीं करता; थोड़ा करता हूं। थोड़ा और प्रयास करूंगा, थोड़ा और ज्यादा करूंगा। इस भांति जमीन कभी इतनी गर्म नहीं हो पाती--थोड़े की वजह से--कि मुझे ऐसा लगे कि छलांग लगाऊं। मैं कहता हूं, थोड़ा तो करता ही हूं, थोड़ा और बढ़ा लूंगा, थोड़ा और बढ़ा लूंगा। इसलिए नहीं करने की पीड़ा कभी भी बहुत स्पष्ट नहीं हो पाती।
अब एक आदमी माला फेर रहा है। तो वह कहता है, थोड़ी साधना करते हैं। इस थोड़ी साधना करने में वह सदा से अपने को साधना से बचा लेगा। क्योंकि वह कहेगा, ऐसा थोड़े ही है कि हम नहीं कर रहे हैं। थोड़ा हम कर रहे हैं। एक आदमी मंत्र जाप कर रहा है। वह कहता है, थोड़ा हम कर रहे हैं, थोड़ा-थोड़ा कर रहे हैं। ऐसा नहीं है कि हम खाली बैठे हैं, कि हम बेकार बैठे हैं। काम जारी है। ऐसे वह अपने मन को समझा रहा है कि कुछ चल रहा है, कुछ चल रहा है, कुछ चल रहा है।
ऐसे काम नहीं होगा। यह धोखा है, यह डिसेप्शन है बहुत गहरे में।

प्रश्नः जब ऐसा होगा, छलांग लगेगी, तब स्मृति तो बिल्कुल लुप्त हो जाएगी, दूर हो जाएगी। परंतु वर्ड्स तो याद रहने ही चाहिए, टेक्निकल वर्ड्स, टेक्निकल एजुकेशन, इस प्रोसेस में याद रहना चाहिए।

दोनों बातें ठीक हैं। असल बात यह है कि मेमोरी, जिसे हम स्मृति कहते हैं न, स्मृति के मिटाने का सवाल नहीं है। स्मृति से हमारा जो आइडेंटिफिकेशन है, उसे तोड़ने का सवाल है। मैं स्मृति ही नहीं हूं, यह जानने का सवाल है। यानी जो मैंने याद कर लिया, जान लिया, पहचान लिया, पढ़ लिया, सुन लिया, समझ लिया, वही मैं नहीं हूं। मैं उससे बहुत पृथक हूं। और यह तो मेरा एक्युमुलेशन है। जैसे मैंने धन इकट्ठा किया है, ऐसे मैंने ज्ञान भी इकट्ठा किया है। वह तिजोरी में बंद है, यह स्मृति में बंद है। यह भी एक तिजोरी है। लेकिन मैं तिजोरी ही नहीं हूं। धनपति भी इस भूल में पड़ जाता है, वह तिजोरी हो जाता है। और ज्ञानी भी इस भूल में पड़ जाता है, वह भी तिजोरी हो जाता है। उसे लगता है, यही मैं हूं। मेरा जानना ही मैं हूं।
नहीं, मेरा जानना ही मैं नहीं हूं। जानना मेरे अस्तित्व की एक प्रक्रिया है। मैं बहुत ज्यादा हूं जानने से। और जो मैं जानता हूं उससे बहुत ज्यादा जानने की मेरी अनंत संभावना है। तो स्मृति से तुएहारी दूरी भर बढ़ेगी, स्मृति मिट नहीं जाएगी। इसलिए तुएहारी टेक्निकल नालेज को कोई फर्क नहीं पड़ने वाला जंप में, बल्कि तुएहारी टेक्निकल नालेज ज्यादा स्पष्ट हो जाएगी। क्योंकि जितने तुम अपनी स्मृति से दूर हो, उतनी क्लैरिटी है। जितना स्मृति के पास हो, उतनी क्लैरिटी कम है, धुंधली हो जाती है। और जब तुम स्मृति से आइडेंटिफाइड हो जाते हो, तब तो तुम बहुत दिक्कत में पड़ जाते हो, बहुत दिक्कत में पड़ जाते हो। स्मृति तो एक मैकेनिकल डिवाइस है, वह टेप-रेकार्डर की तरह है। तुम टेप-रेकार्डर नहीं हो।
लेकिन कोई आदमी टेप-रेकार्डर को पास रखे-रखे समझ ले कि मैं टेप-रेकार्डर हो गया, तो वह मुश्किल में पड़ जाएगा। कल टेप-रेकार्डर टूट जाए, तो

वह समझेगा कि मैं टूट गया; कल टेप-रेकार्डर बंद हो जाए, तो वह समझेगा कि मैं बंद हो गया। और कल टेप-रेकार्डर बंद न हो, बोले ही चला जाए, तो वह कहेगा, मैं क्या कर सकता हूं, मैं तो यही हूं। तो वह बहुत बुरी तरह का बंधन है।
न, टेप-रेकार्डर है, स्मृति भी टेप-रेकार्डर है, जो बिल्कुल प्राकृतिक ढंग का है। और आज नहीं कल हम उसके साथ टेप-रेकार्डर जैसा काम कर सकेंगे। करना शुरू कर दिया है, माइंड वॉश भी हो सकता है। इसमें कोई कठिनाई नहीं रह गई है।
तो यह जो स्मृति है, इससे तुम भिन्न हो। यह छलांग लगाते वक्त मिट नहीं जाएगी, सिर्फ छलांग में तुएहारा फासला बढ़ेगा। तुम साफ देख सकोगे, यंत्र क्या है और चेतना क्या है। तो कांशसनेस और मेमोरी अलग तुएहें साफ दिखाई पड़ने लगेगी। और तब तुएहारी कांशसनेस में एक वर्जिनिटी आएगी, एक कुंआरापन आएगा, जो कि स्मृति के द्वारा करप्ट नहीं किया गया है। असल में स्मृति जो है, बहुत करप्ट करती है।
इसको समझ लेना उचित है। हमारी जो स्मृति है वह हमारे साथ व्यभिचार है। तुम कल मुझे मिले थे और कल तुमने मुझे गाली दी थी। आज जब तुम सुबह मुझे दिखते हो, मैं एकदम करप्ट हो जाता हूं। वह मेरी स्मृति कहती है कि यह वह आदमी आ रहा है जिसने गाली दी थी। अब मैं तुएहें देख ही नहीं पाता, वह कल का आदमी ही देखता रहता हूं कि अब यह वही आदमी आ रहा है जिसने मुझे गाली दी थी। अब मैं तैयार हो रहा हूं कि तुम गाली दोगे। मैं जवाब तैयार कर रहा हूं। कल जो जवाब मैं नहीं दे पाया था, क्योंकि तुमने अचानक गाली दी थी, आज बिल्कुल मैं तैयार रहूंगा कि तुम बोलो, मैं तुएहें जवाब दूं। और जब तुम मुझे गाली देने के लिए तैयार पाओगे तो बहुत संभावना है कि मैं तुममें से गाली भी पैदा करवा लूं, क्योंकि मैं सिचुएशन पूरी तैयार कर रहा हूं। और जब तुम में से गाली पैदा हो जाए, तो मैं कहूंगा कि बिल्कुल ठीक, मैं पहले से तैयार था, वह ठीक ही किया।
तो स्मृति ने करप्ट किया। वह अतीत से बांध दिया उसने। जैसे कल की धूल तुएहारे घर में पड़ी हो और आज सुबह सफाई न हो पाई हो, ऐसा हो गया। और यह धूल अनंत इकट्ठी हो जाती है, इसलिए तुम कभी अनकरप्टेड, वर्जिन नहीं होते कि तुम सीधे कुंआरे... कुंआरे की धारणा यही है--कुंआरे की धारणा यह है कि कुंआरेपन से ज्यादा पवित्र कुछ भी नहीं है।
लेकिन कुंआरेपन का जो हमने मतलब ले लिया वह बहुत अजीब ले लिया। उससे कोई वास्ता नहीं है। कुंआरेपन का मतलब यह है कि जो कल ने करप्ट नहीं किया है जिसे। जिसका अतीत जिसके भविष्य को, वर्तमान को करप्ट नहीं करता है। जिसका अतीत बीच में नहीं आता, जो रोज ताजा खड़ा हो जाता है। अतीत एक कोने पर स्मृति में होता है, लेकिन उसके ऊपर नहीं छाया होता। और वह रोज नये को देखने में सक्षम है।
तो आज तुम आ रहे हो तो मैं तुएहीं को देखूंगा, उसको नहीं जिसने कल मुझे गाली दी थी। क्योंकि वह अब कहां है? गंगा का बहुत पानी बह गया। अब तुम पता नहीं क्षमा मांगने आ रहे होओ और मैं सोच रहा हूं कि तुम वही आदमी हो जो गाली दे गया था। पता नहीं अब चौबीस घंटे में तुम क्या हो गए हो! क्योंकि चौबीस घंटे में अपना ही भरोसा नहीं कि क्या हो जाएंगे, दूसरे का क्या भरोसा!
तो स्मृति जो है, वह करप्टिंग एलिमेंट है। अगर तुमने उससे अपने को आइडेंटिफाइ किया, तुम मरे। बस आखिर में तुम पागल हो जाओगे। अगर उसके करप्शन में पूरे पड़ गए तो पागल हो जाओगे। अगर उससे तुम पूरे बाहर हो गए और स्मृति तुएहारी सिर्फ एक मैकेनिकल डिवाइस रही जो तुएहें काम देती है कि मकान कहां है, दुकान कहां है, जो पढ़ा है वह कहां है, वह सिर्फ एक मैकेनिकल डिवाइस है, जिसका तुम उपयोग कर लेते हो...
जैसे आज नहीं कल, हमने छोटे कंप्यूटर बना ही लिए हैं, वह हम कंप्यूटर जेब में डाल लेंगे। आदमी की स्मृति को इतना परेशान करने की जरूरत नहीं रहेगी। जरूरत नहीं है कि तुम दस फोन नंबर याद रखो। तुम अपने कंप्यूटर में, जैसे डायरी में तुम फीड कर देते हो कि ये मित्रों के फोन नंबर हैं, अपने कंप्यूटर में फीड कर दोगे कि मेरे हजार मित्रों के ये फोन नंबर हैं। और

फिर तुम पूछते हो कि राम का फोन नंबर क्या है? कंप्यूटर तुमसे कह देता है कि इतना है। तो तुएहें अपनी स्मृति में रखने की जरूरत नहीं रह जाएगी, तुम अपना कंप्यूटर साथ रखोगे और वह तुएहारा काम कर देगा।
अभी भी वह भी बहुत इनर-मैकेनिजम कंप्यूटर का ही है, उसको भी हमें फीड करना पड़ता है। इसलिए हमको कहना पड़ता है--राम का फोन नंबर यह है, राम का फोन नंबर यह है। दस दफे कह लेते हैं, वह फीड हो जाता है, उसकी रेखा बन जाती है। लेकिन यह तुम नहीं हो। तुम सदा इसके पार हो। तुम वह हो जिसने यह किया, तुम वह हो जो याद करेगा, तुम वह हो जो भूल सकता है। वह कांशसनेस अलग धारा है।
तो जब छलांग लगेगी, उसमें यह चेतना तुएहारी अलग साफ हो जाएगी। और तब तुम वर्जिन हो जाओगे। तब तुम वर्जिन हो जाओगे।

प्रश्नः सपोज इन ए सिचुएशन आई हैव लॉस्ट माई मेमोरी कंप्लीटली। विल
इट बी पॉसिबल फॉर मी...

अगर तुम जो कह रहे हो, वह ठीक कह रहे हो, तो तुमने कुछ नहीं खोया हुआ है। समझे न? अब एक आदमी कह रहा है कि मैंने अपनी स्मृति पूरी खो दी। वह पक्का सबूत दे रहा है कि उसने कुछ नहीं खोया हुआ है। उसको सब मालूम है कि क्या-क्या खो दिया है। तो फिर कहां, कुछ भी नहीं खोया है। अगर एक आदमी की स्मृति खो जाए, तो बताने वाला कौन आएगा कहने कि भई, मेरी स्मृति खो गई है। समझे न तुम?

प्रश्नः एक चीज और बताइए! एक मित्र हैं, उन्होंने कहा कि मैं परमेश्वर-परमात्मा की धारणा छोड़ दूं और उसकी लगन छोड़ दूं। उसके साथ तुएहारी स्मृति पर फर्क पड़ेगा। तुम जो पोस्ट एंड टेलिग्राफ में इंजीनियर हो, वह नहीं कर पाओगे। वह हो भी नहीं पाता है...

मैं समझा तुएहारी बात। परमात्मा को थोड़े दिन के लिए छोड़ो। छोड़ना इसलिए कि जिस परमात्मा को हम पकड़ और छोड़ सकते हैं वह परमात्मा नहीं हो सकता। समझे न? वह हमारी स्मृति ही है--जो हमने किताबों में पढ़ी है, सुनी है--वह परमात्मा कोहम पकड़े हुए हैं। वह झंझट डालेगा। वह भी करप्ट करेगा तुमको। समझे न? उसको छोड़ो। परमात्मा मैं उसी पवित्रता को कहता हूं जो उस इनोसेंस से आती है जो स्मृति के द्वारा चेतना कोशुद्ध रखने का, मुक्त रखने का आधार है।
परमात्मा का मतलब यह है कि पवित्रतम! परमात्मा का कोई व्यक्ति से मतलब नहीं है। परमात्मा मतलब पवित्रतम। ठीक से समझो--परमात्मा का मतलब यह है कि पवित्रतम। परमात्मा पवित्र है, ऐसा नहीं; जो पवित्र है वह परमात्मा है, ऐसा। समझे न? तो वह जो प्योरिटी है, वह स्मृति तुएहारी रखने की जरूरत नहीं है, वही तो दिक्कत है। उसको छोड़ो। उसको याद रखने की जरूरत नहीं है। और अध्यात्म और गैर-अध्यात्म और यह अलग और वह अलग, यह भी छोड़ो। इससे कोई लेना-देना नहीं है। आनंद से जीओ, शांति से जीओ और अतीत तुएहारे भविष्य को नष्ट न कर सके, इसके प्रति सचेत रहो। समझे न? फिर पोस्ट-टेलिग्राफ में और परमात्मा में बहुत फर्क नहीं है। समझे न? तो तुएहारा जो पोस्ट एंड टेलिग्राफ का जो इंजीनियरिंग है, उसमें और परमात्मा में कोई फर्क नहीं है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

न, न, न। यह तो हम आग्रह ही न करें कि क्या-क्या हो। जो जैसा है, उसे स्वीकार करके हमें शांत रहना चाहिए।

प्रश्नः एक सवाल है।

हां, कहिए।

प्रश्नः ध्यान की अवस्था में जो आवाज सुनाई देती है या खुशबू आती है
या प्रकाश दिखाई देता है, तो बाधा नहीं डालतीं ये सब बातें?

उसमें बाधा ला सकती है और साधक भी बन सकती है। यह आपके एटिट्यूड पर निर्भर है कि आप इसको कैसे लेते हैं। असल में इस जगत में बाधक और साधक दो चीजें नहीं हैं। एक रास्ते पर एक पत्थर पड़ा है। वह बाधक भी हो सकता है और सीढ़ी भी बन सकता है। वह पार जाने से रोक भी सकता है और पार जाने के लिए सहारा भी बन सकता है। तो यह सवाल बहुत महत्वपूर्ण नहीं है कि क्या है बाधा और क्या है साधक। बड़ा सवाल यह है कि कैसे आप उसे लेते हैं।
अब जैसे आपको भीतर एक आनंदपूर्ण सुगंध आनी शुरू हुई। यह सिर्फ एक तथ्य है कि आपने बाहर की सुगंधें जानी थीं, आपने भीतर की भी एक सुगंध जान ली। वह भी बाहर के ही अनंत-अनंत जन्मों का संचित इसेंस है, वह भी। वह भी भीतर नहीं है। आपने भीतर प्रकाश जाना। वह भी बाहर के प्रकाश के अनंत-अनंत अनुभवों का संचित कोश है। जो भीतर बिल्कुल एटामिक फोर्स की तरह इकट्ठा हो गया है। जब वह प्रकट होगा तो सूरज फीका मालूम पड़ेगा। अगर आपने भीतर संगीत सुना, तो वह भी अनंत-अनंत संगीत, अनंत-अनंत ध्वनियों का इकट्ठा सारभूत परफ्यूम है वह भी। वह भीतर प्रकट होगी।
इतना तो तय हुआ कि यह जब प्रकट होती है, तब आप बाहर से उस जगह गए जहां बाहर के अनुभव संचित होते हैं। वह भीतर है जगह। तो आप इनवर्ड गए, यह तो सबूत है इस बात का--कि जब भीतर सुगंध आए, प्रकाश आए और भीतर और तरह के अनुभव आएं, तो इस बात का सबूत है कि आप भीतर गए। आपने स्थूल के जगत से सूक्ष्म में प्रवेश किया। फ्रॉम दि ग्रॉस टु दि सटल। लेकिन अभी अननोन में नहीं गए आप। क्योंकि अननोन को तो रिकग्नाइज ही नहीं कर सकते आप। आप कह रहे हैं कि यह सुगंध है। तो यह नोन की ही दुनिया है; जो सुगंध आप जानते थे, उससे इसका तालमेल है; रिकग्नीशन संभव हो सका है। आप कहते हैं, यह सुगंध है। आप कहते हैं, यह प्रकाश है। तो जो प्रकाश आप जानते रहे थे बाहर, उस प्रकाश से इसका तालमेल है। नहीं तो आप इसको प्रकाश कैसे कहेंगे? तो यह अननोन नहीं है। है तो यह नोन ही। लेकिन जिसे बाहर जाना था, उसे अब आपने भीतर जाना है। जैसे हमने चांद को देखा था आकाश में, अब हमने झील की छाया में देखा चांद को। बस इतना ही फर्क है। भीतर आपके जो बाहर से छाया पड़ी है, रिफ्लेक्शन हुआ है, वहां आपने पकड़ा इसको। तो डायमेंशन तो बदला, लेकिन स्थूल सूक्ष्म हुआ। लेकिन सूक्ष्म भी स्थूल का ही रूप है। बहुत सूक्ष्म रूप है, लेकिन स्थूल का ही रूप है। इसलिए अगर बहुत ठीक से समझें, तो भीतर भी बाहर का ही मॉडीफिकेशन है। जिसको हम बाहर कहते हैं... वह दरवाजे के जो बाहर है वह बाहर है और दरवाजे के जो भीतर है वह भीतर है। इसमें ये कहां अलग होते हैं? किस जगह बाहर अलग होता है, भीतर अलग होता है? बाहर भीतर घुस आता है, भीतर बाहर निकल जाता है। तो सब मिले-जुले हैं। वही श्वास भीतर जाती है, तो आप कहते हैं, भीतर जा रही है; फिर वही श्वास बाहर जाती है, तो आप कहते हैं, बाहर जा रही है। वह तो वही श्वास है। उसके आने-जाने को, आधे को भीतर कह देते हैं, आधे को बाहर कह देते हैं।
बाहर और भीतर एक ही चीज के हिस्से हैं। सूक्ष्म और स्थूल भी एक ही चीज
के हिस्से हैं। और यह सब ज्ञात ही है। लेकिन बाहर के ज्ञात से छलांग लगाना मुश्किल है, भीतर के ज्ञात से छलांग लगाना अज्ञात में आसान है। बस इसी अर्थों में वह सूक्ष्म है।
तो बाधा बन जाएगी अगर आप इसमें रसलीन हो गए और कहने लगे, पा लिया। तो बाधा बन जाएगी। अभी कुछ भी तो नहीं पाया, परफ्यूम ही पाई न! करोड़ों-करोड़ों गुनी अच्छी परफ्यूम पाई, जो बाजार में मिल सकती है, लेकिन है परफ्यूम ही न! और आज नहीं कल वैज्ञानिक उसको भी बना लेगा। ऐसी कोई कठिनाई तो नहीं, परफ्यूम ही पाई न!
आपने संगीत सुना भीतर; कुछ वीणा बजती सुनी, जैसी आपने कभी नहीं सुनी; कोई रविशंकर नहीं बजाता, ऐसी सुनी। लेकिन कोई रविशंकर कभी बजा लेगा। जो

सुनी जा सकती है, वह कभी न कभी बजाई भी जा सकेगी। क्योंकि सुनना और बजाना एक ही प्रक्रिया के दो हिस्से हैं।
तो जो प्रकाश आपने देखा है, वह कभी बाहर भी देखा जा सकेगा, कभी विज्ञान इंतजाम कर लेगा, कि अब हम आपको भीतरी प्रकाश भी दिखाए देते हैं। एल.एसड़ी. और मैस्कलीन से वही सब भीतरी प्रकाश और ध्वनियां दिखाई पड़ रही हैं। वह वैज्ञानिक इंतजाम है।
इसको आध्यात्मिक उपलब्धि समझ लेने की भूल में पड़े, तो बाधा हो जाएगी। अगर समझा कि मिल गया अध्यात्म, हमको तो सुगंध आने लगी, नाद सुनाई पड़ने लगा, प्रकाश दिखाई पड़ने लगा, मिल गया अब सब। तो चूक गए आप। यह फिर जो पत्थर सीढ़ी बनता, वह अब दीवाल बन गया। अब आप अटक गए। अब आप बुरी तरह अटके। क्योंकि स्थूल से तो आपके छुटकारे की आसानी थी, क्योंकि उसमें धोखे में पड़ना बहुत मुश्किल था कि यह अध्यात्म है, लेकिन इसमें धोखे में पड़ना आसान है। अच्छा, उसमें कलेक्टिव मामला था। उसमें और लोग भी थे जो कहते कि नहीं, कैसा अध्यात्म, यह तो मकान है। कैसा अध्यात्म, यह तो सितार की आवाज है। कैसा अध्यात्म, यह तो बिजली का प्रकाश है। कैसा अध्यात्म, यह तो फूल की सुगंध है। दूसरे लोग भी कहते। अब आप बिल्कुल अकेले रह गए। अब दूसरा कोई नहीं रहा। इसलिए अब अपने पर भरोसा कर लेना बहुत आसान है, खुद को धोखा देना बहुत आसान है। क्योंकि क्रिटिक कोई नहीं है अब वहां। अब आप अकेले ही हैं। इस ध्वनि को आप ही सुनते हैं, कोई दूसरा सुनता नहीं। इस प्रकाश को आप ही देखते हैं, कोई दूसरा देखता नहीं। तो अपने आपको अब हैल्यूसिनेट कर लेना बहुत आसान है। अब आप कह सकते हैं, मिल गया। मिल गया कहा तो नुकसान हो जाएगा। जब तक मिल गया कहने की वृत्ति आए, तब तक खतरा है।
नहीं, अभी और छलांग लेनी पड़ेगी। अभी आप स्थूल से सूक्ष्म में आए, बाहर
से भीतर आए, लेकिन अभी अज्ञात में नहीं चले गए हैं। जिस दिन अज्ञात आएगा, उसको रिकग्नाइज नहीं कर सकेंगे आप। क्योंकि अज्ञात को रिकग्नाइज कैसे करिएगा? आप न कह सकेंगे कि यह सुगंध है, न कह सकेंगे प्रकाश है, न कह सकेंगे परमात्मा, न कह सकेंगे आत्मा, न कह सकेंगे मोक्ष, न कह सकेंगे निर्वाण, कुछ न कह सकेंगे, बस इतना ही कह सकेंगे कि नहीं कह सकता हूं। उपाय नहीं है, पहचान नहीं पाता। आया है कुछ, छुआ है कुछ, लेकिन अब शब्द देने का भी उपाय नहीं है। इतना भी नहीं कह सकता कि मैंने पा लिया, क्योंकि मैं भी वहां नहीं टिकता हूं। तब तो अज्ञात में छलांग होगी, वह अतींद्रिय होगी। क्योंकि हमारा सब ज्ञात इंद्रियों का अनुभव है। वहां कुछ भी न रह जाएगा--न कोई वीणा बजेगी, न कोई सुगंध आएगी, न कोई प्रकाश रह जाएगा। वहां कुछ भी न रह जाएगा आब्जेक्ट की तरह--कि यह हो रहा है।
और जहां आब्जेक्ट नहीं रह जाता, वहां सब्जेक्ट भी खो जाता है, क्योंकि उसके बचने के लिए उपाय नहीं है। जब तक कोई चीज हमें दिखाई पड़ती है, तो मैं भी रहता हूं कि मुझे दिखाई पड़ रही है। सुगंध है, तो मैं मौजूद हूं; सुगंध है, मुझे आ रही है। प्रकाश है, मुझे दिखाई पड़ रहा है। जब तक आब्जेक्ट है कोई भी, तब तक मैं भी हूं। जब आब्जेक्टलेस स्थिति होती है, तो मैं कहां टिकूंगा! सहारा कहां रहेगा कि मैं कहूं कि मैं भी हूं! क्योंकि ऐसा मैं कहां टिकेगा जिसको सुगंध नहीं आती, प्रकाश नहीं दिखाई पड़ता, जिसे कुछ दर्शन नहीं होता, अनुभव नहीं होता, कुछ नहीं होता। इसलिए "आध्यात्मिक अनुभव" शब्द बिल्कुल ही गलत है। जब तक अनुभव है तब तक अध्यात्म नहीं है और जब अध्यात्म आता है तब अनुभव नहीं है, क्योंकि अनुभव हमेशा आब्जेक्टिव है, वह सब्जेक्ट-आब्जेक्ट की रिलेशनशिप है। इसलिए वहां वह यह भी नहीं कह सकेगा कि अनुभव हुआ है।
उपनिषद कहते हैं कि जो कहे कि मैंने जान लिया, जानना कि उसने नहीं जाना। यह गवाही हो जाएगी कि उसने अभी नहीं जाना।

प्रश्नः साधना करने के पहले किताबों में हमने पढ़ लिया कि साधक को ऐसा- ऐसा अनुभव हो रहा है, ऐसा होने वाला है, हो सकता है, तो मैं... साधना करने की तैयारी में हूं और मैं कोशिश करूं कि मेरे को... कहां दिखे--तो मुझे दिखाई पड़ता है--व्हाइट कलर, ग्रीन कलर, ब्लू कलर, ऐसा इसकी धारणा करने बैठ जाऊं

शुरू में, निर्विचार की स्थिति आने के पहले ही, तो ये सब जो कल्पनाएं हमको सिखाई जाती हैं, वे बाधा नहीं डालतीं ध्यान में आने के लिए?

बाधा भी डाल सकती हैं, साधक भी हो सकती हैं। असल में ऐसी कोई बाधा नहीं
हो सकती, जो साधक न बन सके। ऐसी कोई बाधा नहीं हो सकती। और ऐसा कोई साधन नहीं हो सकता, जो बाधा न बन सके। एटिट्यूड की बात है। चीज की बात नहीं है। वह बाधक नहीं बनेगी, अगर आप जानते हैं कि सुना है, पढ़ा है, लिखा है, इसलिए हो रहा है, तब तो बाधक नहीं बनती। हम प्रोजेक्ट कर रहे हैं इसलिए हो रहा है, तब तो बाधक नहीं बनती। और अगर आपने कहा कि नहीं, सुना है, लिखा है, पढ़ा है, वह नहीं हो रहा है; यह तो अनुभव ही हो रहा है; तब फिर बाधक बन सकती है। वह गहरे में एटिट्यूड की बात है।
तो सदा इसमें सजग होने की जरूरत है कि जो हो रहा है वह मेरे सुने, लिखे, पढ़े, जाने हुए का संचित रूप तो नहीं है? वह उतना ख्याल में बना रहे, तो एक दिन हो जाएगा वह जो सुना, लिखा, पढ़ा हुआ नहीं है। अभी तो सभी सुना, लिखा, पढ़ा हुआ है--सभी। अभी तो कोई उपाय भी नहीं है। जब तक अनुभव न हो उसका, तब तक सभी सुना, पढ़ा, लिखा है।
पर ऐसी कोई चीज नहीं है--यही कठिनाई है--ऐसी कोई चीज नहीं है, जो दोनों
एक साथ न हो सके। और तब अंततः चीज नहीं है महत्वपूर्ण, हमारा दृष्टिकोण महत्वपूर्ण है। तो मैं यह कहता हूं कि हर चीज को साधन बनाओ। हर चीज को साधन बनाओ। और हर चीज को बाधा समझ लो, तो कठिनाई में पड़ जाएंगे आप।
वह भी उपाय है, हर चीज को बाधा ही समझ लो तो भी छलांग हो जाए। प्रत्येक चीज बाधा समझ में आ जाए कि सब चीज बाधा है; तो सब चीजें छोड़ दो। वह छूटता नहीं। निगेटिव मेथड तो वही है कि सब बाधा है, यह भी बाधा, यह भी बाधा, यह भी बाधा, नेति-नेति, यह भी नहीं, यह भी नहीं, यह भी नहीं। वह छूटता नहीं। क्योंकि हम कहते हैं कि यह सीखा हुआ, पढ़ा हुआ, सुना हुआ, छूटे कैसे?
तो फिर दूसरा रास्ता यह है कि प्रत्येक को साधन बना लो--कि हम इस पर भी पैर रखेंगे, इस पर भी पैर रखेंगे, इस पर भी पैर रखेंगे; लेकिन कहीं रुकेंगे नहीं, छलांग सबसे लगा जाएंगे। और दोनों उपाय हो सकते हैं। इसलिए दुनिया में दो ही साधना पथ हैंः एक पाजिटिव, एक निगेटिव। और तो कुछ भी नहीं है, दो ही साधना पथ हैं। एक जो प्रत्येक चीज को साधन बना लेगा और एक जो प्रत्येक चीज को बाधा समझ लेगा। दोनों से काम हो जाएगा, क्योंकि दोनों टोटल हो जाएंगे। अगर प्रत्येक चीज बाधा है तो भी आप टोटल हो गए। मामला खत्म हो गया। अगर प्रत्येक चीज साधन है तो भी टोटल हो गए। या तो निगेटिविटी में टोटल हो जाएं कि कोई साधन ही नहीं है, तो भी छलांग लग जाएगी। और या पाजिटिविटी में टोटल हो जाएं कि सब चीज साधन है। समझ रहे हैं न?
अब जैसे तंत्र है, वह पाजिटिव है। वह कहता है, सब चीज साधन है--गांजा भी, अफीम भी, स्त्री भी, भोग भी--सब चीज साधन है। वह कहता है, बाधा कुछ है ही नहीं। इसलिए तंत्र यह नहीं कहेगा कि यह बुरा है। वह कहता है, बुरा कुछ है ही नहीं। जो भी है सब साधन है। तंत्र को पचाना भी बहुत मुश्किल है; क्योंकि हम कहेंगे, कुछ तो बुरा है, कुछ अच्छा है। इसलिए हम टोटल नहीं हो पाते। वह तांत्रिक भी टोटल हो जाता है; वह कहता है, सब साधन है। वह गांजा भी पीता है तो कहता है कि जय भोले। तो वह गांजा जो है, गांजे पर खड़े होकर वह भोले में छलांग लगा जाता है। वह कहता है, जय भोले।
अब गांजा और भोले का कोई लेना-देना नहीं। गांजा और भगवान के स्मरण का क्या संबंध है? लेकिन वह कहता है कि तेरा ही है यह भी, हम इस पर भी राजी हैं। वह कहता है, हम इस पर भी राजी हैं। तो वह सब स्वीकार कर लेता है, अस्वीकार ही नहीं करता। और हर चीज से कूदता चला जाता है। वह कहता है, कुछ बाधा ही नहीं है, तो हम किस चीज से डरें!
तंत्र को डराया नहीं जा सकता। उसे डराने का उपाय नहीं है। आप जिससे डराओगे, वह उसी को पी जाएगा। इसलिए शंकर उसके केंद्र पर आ गए। वे जहर भी पी जाएंगे। वह भी साधन है। शंकर जैसा पाजिटिव व्यक्तित्व नहीं हुआ जगत में, क्योंकि वह किसी चीज में बाधा ही नहीं है कुछ।

दूसरे निगेटिव मेथड्स हैं। जैसे बुद्ध का शून्य है या कृष्णमूर्ति की बात है। वह निगेटिव मेथड है। वे कहते हैं, सब बाधा है, सब छोड़ दो। कोई चीज साधन नहीं है। साधन है ही नहीं। इसलिए तुम साधन में उतरना ही मत। साधन पर जाना ही मत। सीढ़ी पर पैर ही मत रखना। पैर ही क्यों रखते हो जब छलांग लगानी है? जब छलांग ही लगानी है, सीढ़ी से उतर ही जाना है, तो चढ़ते किसलिए हो? चढ़ो ही मत। तुम किसी सीढ़ी पर कभी जाओ ही मत। किसी विधि, किसी मेथड को कभी पकड़ो ही मत। तो छलांग लगी ही हुई है। जब तुम पकड़ोगे ही नहीं, सीढ़ी पर पैर ही न रखोगे, कहीं चढ़ोगे ही नहीं, तो कहां जाओगे? तो तुम शून्य में चले जाओगे। ये दो ही हैं। और इन दोनों में बड़ा संघर्ष रहा है। वह संघर्ष नासमझी
से भरा हुआ है। इन दोनों में भारी संघर्ष है। ये दोनों एक-दूसरे के दुश्मन हैं, ये दोनों एक-दूसरे के भारी दुश्मन हैं!
मेरी तकलीफ यह है कि मुझे दोनों ठीक हैं। इसलिए मेरी बात आपको कई दफे दिक्कत की हो जाती है। इसलिए दिक्कत की हो जाती है कि मुझे दोनों ठीक हैं। आपको ऐसा लगता है कि कभी मैं ऐसा कह देता हूं कि यह रही विधि; और कभी मैं कह देता हूं कि कोई विधि नहीं है। तो आपको कठिनाई हो जाती है कि यह मामला क्या है? क्योंकि अगर विधि नहीं है तो फिर हम...
और मैं दोनों ही बात करता रहूंगा। क्योंकि मेरी समझ यह है कि आने वाले भविष्य में दोनों ही बातें... क्योंकि इन दोनों बातों के विरोधी होने ने मनुष्य को बहुत नुकसान पहुंचाया है। बहुत नुकसान पहुंचाया है। क्योंकि कुछ भी नहीं कहा जा सकता कि कौन आदमी किस मार्ग से चला जाएगा। कुछ भी नहीं कहा जा सकता। इसलिए आग्रह खतरनाक हो सकता है। और ये दोनों पंथ, जब पंथ बने, तो आग्रहपूर्ण हो गए, बहुत आग्रहपूर्ण हो गए।
अब जैसे कृष्णमूर्ति हैं। अनाग्रही नहीं हैं; आग्रह भारी है। क्योंकि पाजिटिव को बरदाश्त ही न कर सकेंगे। यह मान ही न सकेंगे कि साधन भी हो सकता है। हो ही नहीं सकता। निगेटिव के लिए आग्रह अति है।
अब जैसे भक्त हैं--भक्त हैं, मीरा है, वह मान ही न सकेगी कि ऐसा भी हो सकता है कि साधन न हो, वह मान ही न सकेगी। वह कहेगी, सभी साधन हैं। असाधन तो हो ही नहीं सकता। नो-मेथड तो हो ही नहीं सकता।
और मेरी तकलीफ यह है कि मुझे दोनों ही ठीक हैं। लेकिन अगर मैं दोनों
को एक साथ आपसे ठीक कहूं तो आप कनफ्यूज भी हो जाएंगे। फिर तो आप बिल्कुल पागल हो जाएंगे। इसलिए मुझे, कभी एक की मैं बात करता हूं। सोचता हूं, जिसको निगेटिव पकड़ जाएगा, वह निगेटिव से चला जाए। कभी पाजिटिव की बात करता हूं। सोचता हूं, कभी किसी को पाजिटिव पकड़ जाएगा, तो वह पाजिटिव से चला जाए। इसलिए मुझसे ज्यादा इनकंसिस्टेंट आदमी खोजना बहुत मुश्किल है। कंसिस्टेंट मुझे होना हो तो बिल्कुल हो सकता हूं। उसमें कोई कठिनाई नहीं है। एक को पकड़ लूं तो कंसिस्टेंट हो जाऊं। लेकिन नहीं हो पाऊंगा। वह मैं दोनों की ही बात करता रहूंगा।
और फिर यह भी पक्का नहीं है कि आपके लिए किस क्षण में कौन सी चीज ठीक
पड़ जाए, यह भी पक्का नहीं है। ऐसा नहीं है कि एक आदमी को सदा ही निगेटिव ठीक पड़ता है। हो सकता है कल उसको निगेटिव ठीक पड़ता हो और आज न पड़े, क्योंकि निगेटिव की असफलता हो सकता है उसके चित्त को पाजिटिव की तरफ ले आए। पाजिटिव की असफलता निगेटिव की तरफ ले जाए। यह कुछ भी नहीं कहा जा सकता। इसलिए आग्रहपूर्ण मंतव्य खतरनाक है। पर आग्रह से बचो तो इनकंसिस्टेंसी अनिवार्य हो जाती है। असंगत वक्तव्य हो जाएंगे। इसलिए मेरे प्रति निरंतर लोग मुझे चिट्ठियां लिखते हैं कि आपने पहले यह कह दिया था, आप फलां किताब में यह कह दिए, उस किताब में आपने यह कह दिया, इस शिविर में आपने यह कहा, उस शिविर में आपने वह कहा।
वे नहीं समझ पा रहे हैं कि उन्हें जो ठीक लगे, उससे वे चल जाएं; मैं तो
सब कहता रहूंगा। यह एक अर्थ में नया प्रयोग है--एक अर्थ में। और मैं यह मानता हूं कि असंगत होने से बड़ी और कोई हिएमत नहीं है। क्योंकि बहुत झंझट का काम है न! संगत होना बहुत सुविधापूर्ण है। एक पक्की राह है मेरी, पक्का हिसाब है। उतना कह देता हूं, बात खत्म हो गई। दूसरा गलत है। उसको मैं काट ही देता हूं, उसकी तरफ फिर कोई सवाल ही नहीं उठता। लेकिन मेरे लिए वह

दूसरा, अगर मैं गलत भी कहता हूं तो सिर्फ इसीलिए कह रहा हूं कि यह रास्ता आपकी समझ में आ जाए। लेकिन जब दूसरे को मैं ठीक कहूंगा तो इस रास्ते को इतना ही गलत कह दूंगा।
असल में, मेरे लिए गलत और सही नहीं है। दो रास्ते हैं और दो तरह के लोग हैं। और हर आदमी में भी दोनों तरह के पहलू हैं। और जटिलता बहुत ज्यादा है। इसलिए पुरुष जो है--पुरुष चित्त; पुरुष नहीं, पुरुष चित्त--उसके लिए पाजिटिव रास्ता आसान पड़ जाता है। एकदम आसान पड़ जाता है। पुरुष चित्त, क्योंकि वहां एग्रेशन है, आक्रमण है। कुछ जीतने को चाहिए, कुछ पाने को चाहिए, कुछ पकड़ने को चाहिए। स्त्री चित्त जो है, वह निगेटिविटी है, वह रिसेप्टिविटी है--कोई आए। वह आक्रमण नहीं है, प्रतीक्षा है। तो जिस सदी में पुरुष का बहुत प्रभाव होता है, जैसे पिछली सारी सदियां, जिसमें स्त्री का कोई प्रभाव नहीं था, पुरुष का प्रभाव था, वे सब साधन की सदियां थीं। आने वाले दिनों में स्त्री धीरे-धीरे प्रभावी हुई है और पश्चिम में जहां कि स्त्री बहुत प्रभावी हो गई है, कृष्णमूर्ति जैसे विचार का प्रभाव पड़ सकता है। क्योंकि निगेटिविटी बढ़ी है। मगर यह इतना डोलता हुआ मामला है, रोज डोलता रहता है। जो ठीक लग जाए आपको, दो में से कोई एक निर्णय प्रत्येक व्यक्ति को अपने भीतर ले लेना चाहिए। अगर उसे लगता हो कि सब चीज बाधा मालूम पड़ती है, तो यह निर्णय भी बहुत अच्छा है।

(प्रश्न का ध्वनि-मुद्रण स्पष्ट नहीं।)

प्रयोग से ही जान सकोगी। बुद्धि भागीदार होगी प्रयोग में भी, लेकिन अकेली बुद्धि से न जान सकोगी। क्योंकि तुएहें कैसे पता चलेगा कि क्या तुएहारे लिए है? अकेली बुद्धि से पता नहीं चलेगा, क्योंकि अनुभव करने की क्षमता नहीं है बुद्धि में। अनुभव की क्षमता तो टोटल पर्सनैलिटी में है। अनुभव पर बुद्धि विचार कर सकती है। अगर अनुभव हाथ में न हो तो बुद्धि कुछ भी नहीं कर पाती।
तो इसलिए प्रयोग करो, देखो, प्रयोग के अनुभव जो आएं उन्हें बुद्धि के हाथ में दे दो और उससे कहो कि सोचो। और अगर ऐसा लगता है कि गति होती है साधन से, तो चली जाओ साधन में, फिर पूरी चली जाओ। ऐसा लगता है कि नहीं होती है गति, तो असाधन में चली जाओ। और यह मेरी इच्छा है कि जो लोग गहरे में जाएं किसी भी इस विधि में से, उसको मैं दूसरी विधि में भी बाद में ले जाना चाहूंगा, ताकि वह आग्रहपूर्ण न रह जाए।
यह पुराना बहुत अतीत का दुखद अनुभव हुआ है कि जो जिस विधि से गया, फिर उसने कभी लौट कर उससे विपरीत विधि का प्रयोग नहीं किया। करना बहुत कीमती है, क्योंकि तब आपमें आग्रह रह ही नहीं जाएगा। क्योंकि आप कहेंगे, फिर आप कह सकेंगे कि सब रास्ते पहुंचा देते हैं। और यह भी कह सकेंगे कि पहुंचने के लिए कोई रास्ता नहीं है। ये दोनों बातें कह सकेंगे।

हसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानम् चौथा प्रवचन

मन के पार

प्रश्नः क्या निराकार वस्तु का ध्यान हो सकता है? और यदि हो सकता है
तो क्या निराकार, निराकार ही बना रहेगा?

ध्यान का साकार या निराकार से कोई भी संबंध नहीं है। ध्यान का विषय-वस्तु से ही कोई संबंध नहीं है। ध्यान है विषय-वस्तु रहितता। गाढ़ निद्रा की भांति।
लेकिन निद्रा में चेतना नहीं है। और ध्यान में चेतना पूर्णरूपेण है। अर्थात निद्रा अचेतन ध्यान है। या ध्यान सचेतन निद्रा है।
गाढ़ निद्रा में भी हम वहीं होते हैं जहां ध्यान में होते हैं, लेकिन मूर्च्छित। ध्यान में भी हम वहीं होते हैं जहां निद्रा में होते हैं, लेकिन जाग्रत।
जागते हुए सोना ध्यान है। या सोते हुए जागना ध्यान है।
फिर जो जाना जाता है, वह न आकार है, न निराकार है। वह है आकार में निराकार, या निराकार में आकार। असल में वहां द्वंद्व नहीं है, द्वैत नहीं है और इसलिए हमारे सब शब्द व्यर्थ हो जाते हैं। वहां न ज्ञाता है, न ज्ञेय है; न दृश्य है, न द्रष्टा है। इसलिए, वहां जो है, उसे कहना असंभव है। कठिन नहीं, असंभव है।
ध्यान है मन की मृत्यु और भाषा है मन की अर्द्धांगिनी, वह मन के साथ ही सती हो जाती है। वह विधवा होकर जीना नहीं जानती है; जाने तो भी जी नहीं सकती है। और उसका पुनर्विवाह भी नहीं हो सकता है, क्योंकि मन के पार जो है, वह उससे विवाह के लिए चिर-अनुत्सुक है। उसका विवाह हो ही चुका है शून्यता से।

प्रश्नः ध्यान किसे कहते हैं, और उसे करने की क्या विधि है?

निर्विचार चेतना ध्यान है। और निर्विचार के लिए विचारों के प्रति जागना ही विधि है। विचारों का सतत प्रवाह है मन। इस प्रवाह के प्रति मूर्च्छित होना--सोए होना, अजाग्रत होना--साधारणतः हमारी स्थिति है। इस मूर्च्छा से पैदा होता है तादात्एय। "मैं" मन ही मन मालूम होने लगता है। जागें और विचारों को देखें। जैसे कोई राह चलते लोगों को किनारे खड़े होकर देखे। बस, इस जाग कर देखने से क्रांति घटित होती है। विचारों से स्वयं का तादात्एय टूटता है।
इस तादात्एय-भंग के अंतिम छोर पर ही निर्विचार चेतना का जन्म होता है। ऐसे ही जैसे आकाश में बादल हट जावें तो आकाश दिखाई पड़ता है। विचारों से रिक्त चित्ताकाश ही स्वयं की मौलिक स्थिति है। वही समाधि है।
ध्यान है विधि। समाधि है उपलब्धि।
लेकिन, ध्यान के संबंध में सोचें मत। ध्यान के संबंध में विचारना भी विचार ही है। उसमें तो जाएं। डूबें। ध्यान को सोचें मत--चखें। मन का काम है सोना और सोचना, जागने में उसकी मृत्यु है। और ध्यान है जागना।
इसलिए मन कहता है--"चलो, ध्यान के संबंध में ही सोचें!" यह उसकी आत्मरक्षा का अंतिम उपाय है। इससे सावधान होना। सोचने की जगह, देखने पर बल देना। विचार नहीं, दर्शन--बस यही मूलभूत सूत्र है। दर्शन बढ़ता है, तो विचार क्षीण होते हैं। साक्षी जागता है, तो स्वप्न विलीन होता है। ध्यान आता है, तो मन जाता है। मन है द्वार संसार का। ध्यान है द्वार मोक्ष का। मन से जिसे पाया है, ध्यान में वह खो जाता है। मन से जिसे खोया है, ध्यान में वह मिल जाता है।

प्रश्नः ध्यान की गहराई में उतरने से उसकी दिन-प्रतिदिन वृद्धि किस प्रकार से होगी और ध्यान की अंतिम अवस्था क्या है?

आप भोजन कर लेते हैं, फिर उसे पचाना नहीं होता है, वह पचता है। ऐसे ही
आप जागें विचारों के प्रति, विचारों के प्रति मूर्च्छा न रहे--इतना आप करें। यह है ध्यान का भोजन। फिर पचना अपने आप होता है। पचना यानी ध्यान का खून बनना--ध्यान की गहराई। भोजन आप करें और पचना परमात्मा पर छोड़ दें। वह काम सदा से ही उसने स्वयं के हाथों में ही रखा हुआ है।
लेकिन, यद्यपि आप भोजन पचा नहीं सकते हैं, फिर भी उसके पचने में बाधा जरूर डाल सकते हैं। ध्यान के संबंध में भी यही सत्य है। आप ध्यान के गहरे होने में बाधा जरूर डाल सकते हैं। विचारों के प्रति सूक्ष्मतम चुनाव और झुकाव ही बाधा है। शुभ या अशुभ में चुनाव न करें। निंदा या स्तुति, दोनों से बचें। न कोई विचार अच्छा है, न बुरा। विचार सिर्फ विचार है। और आपको विचार के प्रति जागना है। सूक्ष्मतम चुनाव भी बाधा है जागने में। तराजू के दोनों पलड़े सम हों, तभी ध्यान का कांटा स्थिर होता है। और ध्यान का कांटा स्थिर हुआ कि तराजू, पलड़े और कांटा सब तिरोहित हो जाते हैं। फिर जो शेष रह जाता है वही समाधि है, वही ध्यान की अंतिम अवस्था है।

प्रश्नः स्वाध्याय और ध्यान में क्या अंतर है?

स्वाध्याय अर्थात स्वयं का अध्ययन। और स्वयं का अध्ययन विचार के बिना संभव नहीं है। इसलिए स्वाध्याय विचार की ही प्रक्रिया है। जब कि ध्यान है विचारातीत, वह है विचारों के प्रति जागना। स्वाध्याय है सोचना, ध्यान है जागना। सोचने में जागना नहीं। क्योंकि जागे और सोचना गया। सोच-विचार में होने के लिए निद्रा आवश्यक है।
सोच-विचार, आंखें खोल कर स्वप्न देखना है। स्वप्न, आदिम सोच-विचार है। स्वप्न चित्रों की भाषा में सोचना है। सोचना स्वप्न का सभ्य रूप है।
सोचने में चित्रों की जगह शब्द और प्रत्यय ले लेते हैं।
लेकिन ध्यान एक अलग ही आयाम है। वह स्वप्न-मात्र से मुक्ति है। वह विचार-मात्र के पार जाना है। स्वप्न अचेतन-मन का चिंतन है। विचार चेतन-मन का चिंतन है। ध्यान मनातीत है।
चेतन-मन जब अन्य को विषय बनाता है तो वह भी विचार है, और जब स्वयं को ही विषय बनाता है तो भी।
ध्यान में विषय से ऊपर उठना है। विषय-मात्र से। इससे कोई मौलिक भेद नहीं पड़ता है कि विषय क्या है--धन है या धर्म, पर है या स्व। मौलिक भेद-- रूपांतरण या क्रांति तो तभी घटित होती है, जब चेतना विषय के ही बाहर हो जाती है। क्योंकि, तभी स्व को जाना जा सकता है। जब चेतना के पास जानने को कुछ भी शेष नहीं बचता है, तभी वह स्वयं को जान पाती है। ज्ञेय जब कोई भी नहीं है, तभी आत्मज्ञान होता है।
स्वाध्याय है स्वयं के संबंध में सोच-विचार और ध्यान है स्वयं को जानना।
और निश्चय ही जिसे जानते ही नहीं, उसके संबंध में सोचेंगे-विचारेंगे क्या? और जिसे जान ही लिया, उसके संबंध में सोच-विचार का प्रश्न ही कहां है? इसलिए, स्वाध्याय से बचें तो अच्छा है। क्योंकि, वह भी ध्यान में बाधा है। और सर्वाधिक सबल, क्योंकि वह ध्यान का नाटक बन जाता है। मन तो उससे बहुत प्रसन्न होता है। क्योंकि, इस भांति वह पुनः स्वयं को बचा लेता है। लेकिन, साधक भटक जाता है। वह फिर विषय से उलझ जाता है।
मन है विषय-उन्मुखता। उसे चाहिए विषय। वह विषय फिर चाहे कोई भी हो-- काम हो या राम, वह विषय-मात्र से राजी है। इसलिए, ध्यान के लिए काम और राम दोनों से ऊपर उठना आवश्यक है। पर और स्व दोनों को समभाव से विदा देनी है! तभी वह प्रकट होता है, जो कि स्व है और जो कि पर भी है। या कि जो न स्व है न पर है, वरन बस है।

प्रश्नः सजगता और साक्षित्व दोनों एक हैं या उनमें भेद है?

सजगता और साक्षित्व दोनों एक नहीं हैं, लेकिन एक ही वस्तु के दो छोर अवश्य हैं। वे चेतना के दो अनुभव हैं। चेतना को एक ऐसा तीर समझें, जिसमें कि दोनों ओर फल हैं। इस तीर का एक फल उस ओर है, जिसके प्रति कि चेतना चेतन है। और दूसरा फल उस ओर है, जहां से कि चेतना चेतन है।
सजगता में पहली बात की ओर इशारा है। साक्षित्व में दूसरी बात की ओर। ध्यान इन दोनों में से किसी भी छोर से शुरू किया जा सकता है। क्योंकि, एक छोर अनिवार्यतः दूसरे छोर को भी अपने साथ ही लपेट लाता है। सजग हों, तो साक्षी आ जाएगा। साक्षी हों, तो सजगता आ जाएगी।
जहां चेतना है, वहां दोनों हैं। जहां अचेतना है, वहां दोनों नहीं हैं।
और जहां एक है, वहां अर्ध-चेतना, अर्ध-मूर्च्छा है। साधारणतः मनुष्य अर्ध-चेतना, अर्ध-मूर्च्छा की अवस्था में है। वह अर्ध-सजग, अर्ध-साक्षी है। उसका होने का बोध, अति धूमिल है। जैसे, कुहासा घिरा हो चारों तरफ, ऐसा ही कुछ दिखाई भी पड़ता है, नहीं भी दिखाई पड़ता है। जो देखता है, उसकी भी झलक कभी मिलती है, कभी नहीं मिलती है।
ध्यान इस अर्ध स्थिति को तोड़ने का प्रयास है। निद्रा में, गहरी निद्रा में, स्वप्नशून्य निद्रा में, सजगता और साक्षी दोनों सो जाते हैं। ध्यान की पूर्णता में दोनों खो जाते हैं। इसीलिए, समाधि और सुषुप्ति विपरीत होकर भी एक अर्थ में समान हैं। सुषुप्ति में न सजगता है, न साक्षी है; क्योंकि दोनों ही सो गए हैं। समाधि में भी दोनों नहीं हैं; क्योंकि दोनों खो गए हैं। सुषुप्ति में मूर्च्छा पूर्ण है, इसलिए द्वैत नहीं है। समाधि में प्रज्ञा पूर्ण है, इसलिए द्वैत नहीं है। पूर्ण सदा अद्वैत है। लेकिन सुषुप्ति के गर्भ में द्वैत है। जब कि समाधि में द्वैत की मृत्यु हो गई है।
ध्यान है प्रक्रिया--मूर्च्छा से प्रज्ञा की ओर। उसके प्राथमिक प्रारंभ ध्रुव दो हैं--सजगता और साक्षित्व। बहिर्मुखी व्यक्तित्व के लिए सजगता से प्रारंभ करना आसान है। क्योंकि सजगता बाहर से प्रारंभ होती है। अंतर्मुखी व्यक्तित्व के लिए साक्षित्व से प्रारंभ करना आसान है। क्योंकि साक्षित्व भीतरी धु्रव से शुरू होता है। ध्यान के ये प्रस्थान बिंदु भिन्न हैं, लेकिन उपलब्धि एक ही है। जैसे ही ध्यान में एक धु्रव स्पष्ट होता है, वैसे ही दूसरा ध्रुव भी अनिवार्यतः प्रकट हो जाता है। और जैसे ही दोनों ध्रुव पूर्णरूपेण प्रकट होते हैं, वैसे ही दोनों का अतिक्रमण होता है। यह अतिक्रमण ही समाधि बन जाता है। फिर दो नहीं हैं। फिर तो जो है वह है।

प्रश्नः ध्यानपूर्वक किया हुआ जाप क्या फलीभूत नहीं हो सकता है?

जब ध्यान ही करना है, तो जाप अनावश्यक है। जपादि, ध्यान से बचने की विधियां हैं। वे विचार को ही पीछे के द्वार से भीतर लाने के उपाय हैं। ध्यान है जागरण--सजगता-- साक्षी-भाव। और जपादि हैं--ज्यादा से ज्यादा आत्मसएमोहन। स्वयं को सुलाने के उपाय। नींद न आती हो तो उपयोगी हैं! शांतिदायी भी हैं, वैसे ही जैसे नींद है। शब्द की पुनरुक्ति आत्मसएमोहन बन जाती है--किसी भी शब्द की। फिर वह चाहे हो ओम, चाहे हो कोका-कोला! अशांत मन स्वयं को भूलने के लिए तो सदा ही तैयार है।
इसीलिए तो मादक द्रव्यों का इतना आकर्षण है। जपादि अरासायनिक मादकताएं हैं। लेकिन भूलने से क्या होगा? विस्मरण विमुक्ति तो नहीं है! जो है, वह फिर लौटेगा, फिर-फिर लौटेगा। बेहोश कितनी देर रहिएगा? नहीं, ऐसे नहीं चलेगा। स्वयं को बदलना ही होगा। विस्मरण नहीं, रूपांतरण ही चाहिए। ध्यान रूपांतरण है। और जाप से, इसीलिए, वह आमूल भिन्न है। ध्यान है स्मृतिपूर्वक होना। जो है, बाहर या भीतर, उसे जागते हुए होने का नाम ध्यान है। जाप है क्रिया, ध्यान है अक्रिया। जाप में कुछ करना होगा, इसीलिए वह मानसिक है। और मन की कोई भी क्रिया कभी भी मन के बाहर नहीं ले जा सकती है। ध्यान है जागना, देखना, साक्षित्व। यह क्रिया नहीं है। यह समस्त क्रियाओं

का विश्राम है। इसलिए, ध्यान मन के पार है और जो सजातीय है, उसे जानने का द्वार है।

प्रश्नः क्या कल्पना से कल्पना नहीं कटती है?

कल्पना से कल्पना कटती है। लेकिन, कल्पना करने वाला मन नहीं कटता है।
और काटना कल्पना को नहीं, मन को ही है। कल्पना करें या कल्पना न करें, मन दोनों ही स्थितियों में सबल होता है। क्योंकि, दोनों में ही उसकी शक्ति काम आती है। जाना है मन के बाहर। और यह उसे सबल करके नहीं हो सकता है। इसलिए ऐसा कुछ करें, जो मन को निर्बल करे, निर्वीर्य करे, मृत करे।
लेकिन कुछ भी क्यों न करें, वह सबल ही होगा। क्योंकि, सब करना उसी का करना है। तब न करने--अक्रिया के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है। न करना अर्थात बस होना। जब हैं मात्र और कुछ भी नहीं कर रहे हैं, तभी यह जागरण आता है, जो कि ध्यान है।
और ध्यान मन से मुक्ति है। ध्यान अर्थात अमन। मन संसार में वाहन है। अमन, सत्य में। संसार का वाहन सत्य के आयाम में साधक तो है ही नहीं, बाधक भी है। जमीन पर चलें बैलगाड़ी से। लेकिन, आकाश में बैलगाड़ी से न उड़ें, तो अच्छा है। यह आपके भी हित में है और बैलों के भी हित में है! लेकिन, बैलगाड़ी से परिचित होने के कारण ख्याल आता है कि जो जमीन पर चलती थी, वह आकाश में क्यों न चलेगी? इसमें बैलगाड़ी की कोई भूल नहीं है। भूल है तो आकाश की ही है कि वह पृथ्वी नहीं है।
लेकिन, यह तो कभी हो भी सकता है कि बैलगाड़ी आकाश में भी उड़ सके, क्योंकि पृथ्वी और आकाश भिन्न हैं, लेकिन विपरीत नहीं। पर मन की सत्य में कभी कोई गति नहीं हो सकती है, क्योंकि संसार और सत्य के आयाम ही विपरीत हैं।
जैसे स्वप्न में जागना संभव नहीं है। क्योंकि जब तक स्वप्न है, तब तक जागरण नहीं है। और जब जागरण है, तब स्वप्न नहीं है। स्वप्न के अस्तित्व की मूलभूत शर्त ही निद्रा है। ऐसी ही स्थिति मन और सत्य की है। जब तक मन है, तब तक सत्य नहीं है। और जब सत्य है, तब मन खोजे से भी नहीं मिलता है। सत्य को आने देना है, तो मन को जाने दें। उसके रिक्त स्थान में ही सत्य का सिंहासन निर्मित होता है।

प्रश्नः मन में उठते बुरे भावों को किस प्रकार रोका जाए?

यदि रोकना है, तो रोकना ही नहीं। रोका, कि वे आए। उनके लिए निषेध सदा निमंत्रण है। और दमन से उनकी शक्ति कम नहीं होती, वरन बढ़ती है। क्योंकि दमन से वे मन की और भी गहराइयों में चले जाते हैं। और न ही उन भावों को बुरा कहना; क्योंकि बुरा कहते ही उनसे शत्रुता और संघर्ष शुरू हो जाता है। और स्वयं में, स्वयं से संघर्ष संताप का जनक है। ऐसे संघर्ष से शक्ति भर अकारण अपव्यय होती है और व्यक्ति निर्बल हो जाता है। जीतने का नहीं, हारने का ही यह मार्ग है। फिर क्या करें?
पहली बात, जानें कि न कुछ बुरा है, न भला है। बस भाव हैं। उन पर मूल्यांकन न जड़ें, क्योंकि तभी तटस्थता संभव है।
दूसरी बात, रोकें नहीं, देखें। कर्ता नहीं, द्रष्टा बनें, क्योंकि तभी संघर्ष से विरत हो सकते हैं।
तीसरी बात, जो है, है; उसे बदलना नहीं है, स्वीकार करना है। जो है, सब परमात्मा का है। इसलिए आप बीच में न आएं, तो अच्छा है। आपके बीच में आने से ही अशांति है और अशांति में कोई भी रूपांतरण संभव नहीं है। समग्र स्वीकृति का अर्थ है कि आप बीच से हट गए हैं। और आपके हटते ही क्रांति है। क्योंकि, जिन्हें आप बुरे भाव कह रहे हैं, उनके प्राणों का केंद्र अहंकार है। अहंकार है तो वे हैं। अहंकार गया कि वे गए। आपके हटते ही वह सब हट जाता है, जिसे कि आप जन्मों-जन्मों से हटाना चाहते थे और नहीं हटा पाते थे। क्योंकि उन सबों की जड़ें आप में ही छिपी थीं। लेकिन, लगता है कि आप सोच में

पड़ गए। सोचिए नहीं, हटिए। बस हट ही जाइए और देखिए। जैसे अंधे को अनायास आंखें मिल जाएं, बस ऐसे ही सब कुछ बदल जाता है। जैसे अंधेरे में अचानक दीया जल उठे, बस ऐसे ही सब कुछ बदल जाता है। कृपा करिए और हटिए।

प्रश्नः क्या ऐसे भी कोई जाप हैं, जो सहज जप व ध्यान का रूप ले लें?

नहीं, क्योंकि असहज सहज कैसे हो सकता है? असहज सहज नहीं बनता है; असहज
से मुक्ति ही सहज में ले जाती है। प्रयास अप्रयास का द्वार नहीं है; प्रयास से मुक्ति ही अप्रयास का द्वार बनती है। और सत्य को प्रयास से नहीं पाया जा सकता है। क्योंकि, वह तो है ही और मिला ही हुआ है। प्रयास में हैं हम, इसीलिए उससे चूके हुए हैं। वह है निकट और सदा से उपस्थित। लेकिन, हम हैं व्यस्त अर्थात, उसके प्रति अनुपस्थित। और अनुपस्थिति तो समान ही है। कोई धन पाने में व्यस्त है, कोई धर्म पाने में; कोई फिल्मी गीत गाने में व्यस्त है, कोई जप-जाप में; कोई माला फेरने में व्यस्त है, कोई धूम्रपान में; कोई कागज के शास्त्रों में उलझा है, कोई कागज के पत्तों में लीन है। लेकिन, सभी उसके प्रति अनुपस्थित हैं, जो कि है, सभी ओर, सदा से। एक व्यस्तता से ऊब जाता है मन, तो तत्काल दूसरी व्यस्तता का आविष्कार कर लेता है। धूम्रपान से ऊब जाता है, तो माला फेरता है; दुकान से ऊबता है, तो मंदिर खोज लेता है; लेकिन अव्यस्त नहीं होता है। जब कि जो है, वह अव्यस्त क्षणों के अंतराल में ही जाना और जीया जाता है। उसे खोजो मत। वह तो, यह रहा। उसके लिए दौड़ें मत। वह तो, यहीं है। उसके लिए प्रयास मत करें, क्योंकि उसका निर्माण नहीं करना है, वह तो है ही। केवल, बस आप भी हों अभी यहीं और वह प्रकट हो जाता है।

प्रश्नः आप गुरु का निषेध करते हैं, किंतु काम तो गुरु का ही कर रहे हैं?

वह काम ही ऐसा है कि जो निषेध करता है, वही कर सकता है। जो कहता है कि
वह गुरु है, वह तो शिष्य होने के योग्य भी नहीं रह जाता है। लेकिन न तो मैं गुरु ही हूं और न मैं गुरु का काम ही कर रहा हूं--मैं किसी को कुछ भी नहीं सिखाना चाहता हूं। वरन जो कोई कुछ सीखा है, उसे भी अनसीखा करने को कहता हूं। मैं किसी को ज्ञान नहीं देता हूं। उलटे ज्ञान छीनता हूं। मैं किसी को भी सिद्धांत नहीं देता हूं। उलटे सिद्धांत-मुक्त करता हूं। मैं शास्त्र-भंजक हूं, इसलिए शास्त्र-निर्माता कैसे हो सकता हूं? मैं सत्य की ओर नहीं, उस शून्य की ओर ही सदा इशारा करता हूं।
इसलिए, मुझे पकड़ने और पूजने का तो कोई उपाय ही नहीं है। मैं स्वयं शून्य हूं और दूसरों को भी शून्य की ओर पुकार रहा हूं। मैं मोक्ष का नहीं, बस महामृत्यु का ही आश्वासन देता हूं। अब मैं चाहूं भी तो भी कैसे गुरु बन सकता हूं? लेकिन, मैं चाहता भी नहीं हूं। क्योंकि मैं जो हूं या नहीं हूं, पर्याप्त हूं, और अन्यथा कुछ भी बनना नहीं चाहता हूं। जब से जाना उसे जो है, तब से कुछ भी बनने की दौड़ खो गई है। दौड़ ही नहीं, दौड़ने वाला भी खो गया है। अब तो मैं चमत्कार ही हूं, क्योंकि नहीं हूं और फिर भी हूं।

प्रश्नः मन को स्थिर कैसे करें? उसका उपाय क्या है?

मन स्थिर होता ही नहीं। वस्तुतः अस्थिरता, चंचलता का नाम ही मन है। इसलिए मन या तो होता है, या नहीं होता है। मन या अमन, बस ऐसी ही दो स्थितियां हैं। मन से सत्य, संसार की भांति दिखता है। संसार अर्थात चंचलता के द्वार से देखा गया ब्रह्म। और अमन से जो है, वह वैसा ही दिखता है, जैसा है। सत्य जैसा है, उसे वैसा ही जानना ब्रह्म है।
इसलिए मन को स्थिर करने की बात ही न पूछें। मन को स्थिर नहीं करना है, बल्कि मिटाना है। शांत तूफान जैसी कोई चीज देखी-सुनी है? ऐसे ही शांत मन जैसी कोई चीज नहीं है। मन अशांति का ही पर्याय है।

और तब उपाय का तो सवाल ही नहीं उठता है। सब उपाय मन के ही हैं। मन मिटाना है तो उपाय में नहीं, निरुपाय में जाना पड़ता है। उपाय करने से मन घटता नहीं, बढ़ता है। क्योंकि, उपाय वही तो करता है। और मन ही जो करता है, उससे मन कैसे मिट सकता है? फिर क्या करें? नहीं! करें कुछ भी नहीं। बस जागें, देखें सारी बातें। मन को ही देखें। मन के प्रति होशपूर्ण हों। और फिर धीरे-धीरे मन गलता है, पिघलता है, मिटता है। साक्षी-भाव सूर्योदय की भांति मन की ओस को वाष्पीभूत कर देता है। चाहें तो कहें कि यही उपाय है।

प्रश्नः साक्षी-भाव से मन को देखने से जब मन निर्विचार हो जाता है, उसके बाद क्या परिस्थिति होती है?

परिस्थिति! परिस्थिति वहां कहां है? बस सब परिस्थितियां मिट जाती हैं, और वही शेष रह जाता है, जो है। और जो है, वह सदा से है। परिस्थिति प्रतिपल बदलती है, "वह" कभी नहीं बदलता है। परिस्थिति परिवर्तन है और वह सनातन। परिस्थिति में सुख है, दुख है। सुख दुख में बदलता है, दुख सुख में बदलता है। बदलता है, तो और कोई राह भी नहीं है। और वहां न सुख है, न दुख है। क्योंकि वहां परिवर्तन नहीं है। फिर वहां जो है, उसी का नाम आनंद है। ध्यान रहे कि आनंद सुख नहीं है। क्योंकि सुख वही है, जो दुख में बदल सकता है। और आनंद दुख में नहीं बदलता है। आनंद बदलता ही नहीं है। इसीलिए आनंद से विपरीत कोई स्थिति नहीं है। आनंद अकेला है। आनंद अद्वैत है। ऐसे ही, परिस्थिति में ही जन्म है, मृत्यु है। जहां जन्म है, वहां मृत्यु होगी ही। वे एक ही पेंडुलम की दो परिवर्तन स्थितियां हैं। जन्म मृत्यु बनता रहता है। फिर मृत्यु जन्म बनती रहती है। परिस्थिति इसी चक्र का नाम है। और वहां--सत्य में, न जन्म है, न मृत्यु। कहें कि वहां जीवन है। जन्म की उलटी परिस्थिति मृत्यु है। जीवन से उलटा कुछ भी नहीं है। वहां जीवन है, जीवन है और जीवन है। इस अनंत जीवन का नाम ही ब्रह्म है।

प्रश्नः सजगता से आपका क्या तात्पर्य है? पल-पल सजग जीवन कैसे जीया जाता है?

सजगता से तात्पर्य है, बस सजगता। साधारणतः मनुष्य सोया-सोया जीता है। स्वयं की विस्मृति निद्रा है। और स्वयं का स्मरण जागृति। ऐसे जीएं कि कोई भी स्थिति स्वयं को न भुला सके। उठते-बैठते, चलते-फिरते, श्रम में, विश्राम में स्व न भूले। "मैं हूं" इसकी सतत चेतना बनी रहे। फिर धीरे-धीरे "मैं" मिट जाता है, और मात्र "हूं" रह जाता है। क्रोध आए तो जानें कि "मैं हूं"। और क्रोध नहीं आएगा। क्योंकि क्रोध केवल निद्रा में ही प्रवेश करता है। विचार घेरें, तो जानें कि "मैं हूं"। और विचार विदा होने लगेंगे। क्योंकि वे केवल निद्रा के ही संगी-साथी भर हैं। और जब चित्त से काम, क्रोध, लोभ, मोह, सब विदा हो जाएंगे, तब अंतिम विदा होगी "मैं" की। और जहां "मैं" नहीं, वहीं वह है, जो ब्रह्म है।

प्रश्नः गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए लक्ष्य की प्राप्ति कैसे हो सकती है?

सवाल गृहस्थ और संन्यासी का नहीं है, सवाल है साक्षी का। मैं जो भी कर रहा हूं, उसका ही मुझे साक्षी होना है। फिर वह करना चाहे घर का हो, चाहे आश्रम का। निद्रा से जागना है। फिर वह निद्रा चाहे सफेद वस्त्रों में हो, चाहे गैरिक वस्त्रों में। वस्तुतः तो जो साक्षी है, वही संन्यासी है। और साक्षी कहीं भी हुआ जा सकता है। परिस्थितियां विचारणीय ही नहीं हैं और उनसे भागना व्यर्थ है। भागने से जागना नहीं आता है। क्योंकि भागना भय है। भय के प्रति भी जागें। और भाग ही रहे हों, तो भागने के प्रति भी जागें। जागरण वहां पहुंचा देता है, जहां वीतरागता है। वही वास्तविक संन्यास है।
निश्चय ही ऐसे संन्यास में बहुत कुछ छूट जाता है। लेकिन वह छोड़ता नहीं है,

छूटता है। जैसे वृक्षों से सूखे पत्ते गिर जाते हैं, बस ऐसे ही बहुत कुछ अपने आप गिर जाता है। अज्ञान गिर जाता है, तो अज्ञान की उत्पत्तियां गिर जाती हैं। मूर्च्छा जाती है, तो मूर्च्छा के साथी चले जाते हैं। गृहस्थ और संन्यासी, ऐसे भेद व्यर्थ हैं। मूर्च्छित और जाग्रत, ऐसे भेद में ही सार्थकता है।
मूर्च्छित ही गृहस्थ है, क्योंकि वह शरीर से बंधा है। शरीर गृह है। और जाग्रत ही अगृही है, संन्यासी है। क्योंकि उसने उसे पहचान लिया है, जो कि शरीर नहीं है--अशरीरी है। आह! उसे पहचानते ही फिर संसार नहीं रह जाता है। और जो शेष रह जाता है, वही ब्रह्म है।

प्रश्नः आपका साहित्य भी शास्त्रों से भिन्न नहीं, फिर आप शास्त्रों
का विरोध क्यों करते हैं?

मैं साहित्य का विरोधी नहीं हूं। लेकिन शास्त्रीयता, अथारिटी का अवश्य विरोधी हूं। शास्त्रीयता सत्य की शत्रु है। सत्य का दावा ही सत्य की शत्रुता है। सत्य सदा विनम्र है और शास्त्र सदा अविनम्र। सत्य का कोई संप्रदाय नहीं है। सब संप्रदाय शास्त्र के हैं। सत्य का कोई मत नहीं है। वस्तुतः तो जहां मतों का अंत है, वहीं सत्य का आरंभ है।
लेकिन शास्त्र का मत है। शास्त्र अर्थात मत। गीता साहित्य की भांति अनुपम है, लेकिन शास्त्र की भांति खतरनाक। कुरान साहित्य की भांति अद्वितीय है, लेकिन संप्रदाय की भांति अत्यंत विषाक्त। इसलिए मैं चाहता हूं साहित्य हो, लेकिन शास्त्र न हों। साहित्य मुक्त करता है। शास्त्र बांधते हैं।

प्रश्नः क्या शास्त्र ऋषियों की अनुभूति नहीं हैं? यदि हैं, तो क्या उनसे हमें लाभ नहीं हो सकता है?

शास्त्र में स्वयं अनुभूति नहीं है। यद्यपि उसका जन्म अनुभूति से हुआ है। जैसे शब्दकोश के "घोड़े" में घोड़ा नहीं है; ऐसे ही शास्त्रों के शब्दों में भी सत्य नहीं है। "घोड़ा" अस्तबल में है। "घोड़ा" शब्द शब्दकोश में है। "परमात्मा" शब्द शास्त्र में है। और शब्द "परमात्मा" परमात्मा नहीं है। उसे पाना है तो सब शब्द छोड़ने पड़ते हैं। और शास्त्रों में शब्द ही हैं। अर्थात उसे पाना है, तो सब शास्त्र छोड़ने पड़ते हैं। शास्त्र से वह नहीं मिलता है। यद्यपि उसके मिलने से शास्त्र जन्म सकते हैं।
शास्त्र है उसे कहने की चेष्टा जो कि नहीं कहा जा सकता है। इसीलिए जो साहित्य सत्य होने का दावा करता है, वह इसी कारण असत्य हो जाता है। जो जानता है, वह यह भी जानता है कि जो जाना गया है, वह कहा नहीं जा सकता है। शास्त्र होने के दावेदार साहित्य में यह विनम्रता नहीं होती है। और इसीलिए मैं शास्त्र को विक्षिप्त हो गया साहित्य कहता हूं।
ऋषि सत्य को कहने की चेष्टा करते हैं, लेकिन कह नहीं पाते हैं। असल में जिसे मौन में पाया है, उसे शब्द में नहीं कहा जा सकता है। अनुभूति है अनंत और अभिव्यक्ति है सीमित; अनुभूति है मनातीत, बियांड माइंड, और अभिव्यक्ति है मानसिक; और इसलिए सत्यानुभूति और सत्याभिव्यक्ति में तालमेल असंभव है।
शास्त्र इसके प्रमाण हैं--इस असंभावना के और इस अपरिहार्य असफलता और असमर्थता के। और इस असंभावना में ही उनका सौंदर्य भी है। और जो इस सत्य को जानता है, वह उनसे लाभ भी उठा सकता है। लेकिन जो यह नहीं जानता है, वह शास्त्रों से बंध जाता है और असीम हानि का भागीदार होता है।
शब्द का एक ही लाभ है, शब्द से मुक्ति। शास्त्र का एक ही लाभ है, शास्त्र से छुटकारा। और धन्य हैं वे लोग, जो शास्त्र से मुक्त हो जाते हैं; क्योंकि वे वहां पहुंच जाते हैं जहां कि सत्य है। और अभागे हैं वे लोग, जो शास्त्र से बंध जाते हैं; क्योंकि वे वहीं ठहर जाते हैं जहां कि मात्र शब्द हैं। और शब्द से ज्यादा रिक्त और थोथी और कोई वस्तु नहीं है।

शब्द संकेत है। संकेत पकड़ने के लिए नहीं है। जैसे मैं अंगुली से चंद्रमा को इंगित करूं और कोई मेरी अंगुली को ही चंद्रमा समझ कर पकड़ ले! ऐसी ही भूल शब्द को पकड़ने से होती है। अंगुली को छोड़ना है और चंद्र को देखना है। चंद्र को देखने के लिए अंगुली को बिल्कुल ही छोड़ देना है। अंगुली से बंधी दृष्टि चंद्र को कैसे देख सकती है?
यह बड़े मजे की बात है कि शास्त्र का लाभ वे ही उठा पाते हैं जो शास्त्र
को छोड़ पाते हैं। निश्चय ही यह साहस सिर्फ सच्चा धार्मिक चित्त ही जुटा पाता है। धर्म है ही साहस। लेकिन जो भयवश धार्मिक हैं, वे तो बेचारे शास्त्रों में सुरक्षा, सिक्योरिटी खोजते हैं, वे कैसे उन्हें छोड़ सकते हैं! और अपनी इस कमजोरी को ही वे धर्म मान लेते हैं। और जब धर्म भी कमजोरियों का बचाव बनता है, तब वह नष्ट हो जाता है।
धर्म हमारी कमजोरियों को बचाने के लिए नहीं, मिटाने के लिए है। धर्म
से बड़ा कोई साहसिक अभियान, एडवेंचर नहीं है; क्योंकि धर्म स्वयं का आमूल रूपांतरण है। और यह रूपांतरण तभी संभव है, जब हम अपनी समस्त सुरक्षाओं, कमजोरियों, अज्ञानों, भयों और पलायनों को छोड़ने को तैयार हों।
लेकिन हम तो उलटे स्वयं को उघड़ने से बचाते हैं। धर्म को हम अपनी नग्नताओं के लिए वस्त्र बना लेते हैं। और जब कि धर्म है मात्र अग्नि। वह स्वयं को जलाने के लिए है--स्वयं को बचाने के लिए नहीं।
इसलिए ही तो हमने धर्म से भी बचने के लिए मिथ्या धर्म विकसित कर लिए हैं। सत्य से बचने के लिए शब्द पकड़ लिए हैं। सत्य और स्वयं के बीच शास्त्रों की दीवार खड़ी कर ली है। सत्य से पलायन के लिए संप्रदाय बना लिए हैं।

प्रश्नः आप साधुओं-संन्यासियों के विरोधी क्यों हैं?

मैं और साधुओं का विरोधी! आपके प्रश्न ने तो मुझे बड़े आश्चर्य में डाल दिया है। साधुता के नाम पर जो असाधुता चलती है, मैं उसका ही विरोधी हूं। और साधुता प्रकट हो सके, इसलिए ही यह विरोध है।
ध्यान रहे कि असाधुता से साधुता को हानि नहीं है। हानि है सदा मिथ्या साधुता से। असली सिक्कों को कंकड़-पत्थर हानि नहीं पहुंचाते हैं, हानि पहुंचाते हैं सिर्फ नकली सिक्के, वे असली सिक्कों को चलन के ही बाहर कर देते हैं! झूठे साधुओं के कारण साधुता के प्रकट होने की संभावनाएं ही क्षीण हो गई हैं। झूठे साधुओं के कारण साधुता ही अपमानित हो गई है। और झूठी साधुता का पहला लक्षण हैः आरोपित साधुता, कल्टीवेटेड रिननसिएशन। साधुता आती है, लाई नहीं जाती। मैं साधु हो सकता हूं, बन नहीं सकता। अभ्यास से, आरोपण से, साधुता मात्र दिखती है, होती नहीं। साधुता है सरलता, सहजता। और अभ्यास है सदा जटिल! अभ्यास है द्वंद्व और दमन। इसलिए अभ्यास से कोई कभी सरल नहीं हो सकता है। वैसा होना असंभव है। बंध्या-पुत्र जैसी ही वह असंभावना है।
सरलता आती है समझ, अंडरस्टैंडिंग से। स्वयं को उसकी समग्रता में समझना ही सरलता का द्वार है। जो स्वयं को समझ लेता है, वह पाता है कि साधु हो गया है। लेकिन वह साधु "बनता" नहीं है। क्योंकि "बनता" तो सिर्फ वही है, जो जानता है कि "नहीं" है। असाधु ही साधु "बनते" हैं। जो हो जाते हैं, वे तो बस हो जाते हैं। उनकी साधुता स्वयं के समक्ष एक आविष्कार, डिस्कवरी होती है। और तथाकथित असाधु-साधुओं की साधुता दूसरों के समक्ष मात्र एक घोषणा है। सत्य साधुता इतनी सहज और सरल है कि उसकी घोषणा का सवाल ही नहीं है। वह तो आती ही स्वयं के विसर्जन से है। अहंकार जहां है, वहां वह नहीं है। लेकिन मिथ्या साधुता अहंकार का ही सूक्ष्मतम सृजन है। इसीलिए तो वह वस्त्रों में ही होती है। इसीलिए तो वह संप्रदायों में होती है, क्रियाकांडों में होती है, पद-पदवियों में होती है। आह! कैसा आश्चर्य है कि साधु भी जैन होते हैं, हिंदू होते हैं, मुसलमान होते हैं! कम से कम साधु तो बस मनुष्य होना चाहिए न? साधु भी महामंडलेश्वर होते हैं, जगतगुरु होते

हैं, पोप होते हैं। कम से कम साधु तो पद-पदवियों के बचकानेपन से मुक्त होने चाहिए न? लेकिन ऐसा नहीं है; क्योंकि साधु ही साधु नहीं हैं।

प्रश्नः आप संन्यास के विरोधी हैं या संन्यासियों के?

मैं संन्यास को जीवन-सौंदर्य की परमावस्था कहता हूं। वहीं सत्य के फूल खिलते हैं और शिवत्व की सुगंध भी जन्मती है। इसलिए मैं संन्यास में ही जीवन की परम सार्थकता और धन्यता को देखता हूं। जिसने संन्यास नहीं जाना, उसने जीवन भी नहीं जाना। जीवन को जानते ही वे हैं, जो जीवन को मुक्ति बना लेते हैं। संन्यास का अर्थ है, ऐसा जीवन जो बंधन नहीं है।
लेकिन तथाकथित संन्यासियों के गिरोहों ने संन्यास को भी बंधनों की एकशृंखला बना लिया है। गृहस्थ है कुआं, तो संन्यस्थ है खाई। तथाकथित संन्यासी गृहस्थ का ही शीर्षासन करता हुआ रूप है। वह, बंधनों से मुक्ति नहीं है--बंधनों की बदलाहट मात्र है। और प्रतिक्रिया में सदा ऐसा ही होता है। प्रतिक्रिया क्रांति नहीं है। प्रतिक्रिया है विरोध। और विरोध सदा उससे ही बंधा होता है, जिसका कि वह विरोध है। वह उसकी ही सातत्यशृंखला की एक लड़ी है। उसमें सातत्य टूटा नहीं, जारी है। इसीलिए संन्यास की व्यवस्था गार्हस्थ्य की ही सततता है।
वस्तुतः संन्यास की व्यवस्था हो नहीं सकती है। संन्यास है ही व्यवस्था का अतिक्रमण। इसलिए जैसे ही संन्यास को व्यवस्था मिलती है, संगठन मिलता है, अनुशासन और अनुशास्ता मिलते हैं, वैसे ही संन्यास मर जाता है। संन्यास व्यक्तिगत अनुभूति है। और संन्यासी सामाजिक संस्था है। तथाकथित संन्यासियों के कारण संन्यास का संगीत नष्ट हो गया है। इसलिए मैं कहता हूं संन्यास तो हो और खूब हो, लेकिन तथाकथित संन्यासी बिल्कुल न हों, तो अच्छा है।

प्रश्नः यदि आप अध्यात्म का ही प्रचार करें, तो क्या यह अच्छा नहीं होगा? आप बीच-बीच में राजनीति तथा अन्य विषयों की चर्चा क्यों ले बैठते हैं?

मैं जीवन को देखता हूं उसकी समग्रता में। और ऐसी समग्र दृष्टि, टोटल वि.जन को ही कहता हूं अध्यात्म। राजनीति एक विषय है, गणित एक विषय है, नीति एक विषय है। अध्यात्म उसी भांति एक विषय नहीं है। अध्यात्म है--"पूर्ण जीवन"।
अध्यात्म है जीवन को उसकी अखंडता में जानना और जीना। इसलिए राजनीति अपने खंड में जी सकती है, गणित अपने खंड में, लेकिन अध्यात्म नहीं। क्योंकि अध्यात्म का कोई खंड ही नहीं है। अध्यात्म तो पूर्ण जीवन की कला है। वह तो पूर्ण जीवन को स्पर्श करेगा। यद्यपि राजनीति नहीं चाहेगी कि अध्यात्म उसे छुए। न ही विज्ञान ऐसा चाहेगा। न ही वाणिज्य। क्योंकि अध्यात्म जिसे छूता है, उसे ही बदल देता है। राजनीति पर अध्यात्म की छाया पड़ते ही वह, वही नहीं हो सकती है, जो है। और न ही विज्ञान वही होगा। और न ही वाणिज्य।
इसलिए यह उनके हित में है कि अध्यात्म उन्हें न छुए। लेकिन यह अध्यात्म के हित में नहीं है। अध्यात्म तो खंड से बंधते ही रक्तहीन हो जाता है और पीला पड़ जाता है। वह अखंड का होकर ही बस स्वस्थ हो सकता है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि अध्यात्म राजनीतिक बने या कुछ और। उसे स्वयं कुछ भी नहीं बनना है, उसका तो दृष्टिपात ही पर्याप्त है, वह देखे भर राजनीति की ओर, विज्ञान की ओर, वाणिज्य की ओर। उसकी दृष्टि--उसका जागरूक होना ही क्रांति बन जाएगा।
मैं इसी दिशा में प्रयास कर रहा हूं और करता रहूंगा।
लेकिन अनेक न्यस्त स्वार्थों को इससे भय लगता है। वे अध्यात्म की भी सीमाएं तय करना चाहते हैं। उनका यह प्रयास स्वयं को बचाने की चेष्टा है और अध्यात्म को मारने की। शोषण की व्यवस्था नहीं चाहेगी कि अध्यात्म समस्त

व्यवस्था में रुचि ले। क्योंकि, अध्यात्म शोषण के जाल को कैसे बरदाश्त कर सकता है? और जो अध्यात्म करता है, वह निर्वीर्य है और नपुंसक, इंपोटेंट है। वस्तुतः वह अध्यात्म ही नहीं है। और ऐसा थोथा अध्यात्म ही प्रचलित है। ऐसे अध्यात्म ने निश्चय ही अफीम का कार्य किया है। मैं ऐसे किसी भी अफीम के व्यवसाय में सिएमलित होना नहीं चाहता हूं।
और रह गई अध्यात्म के प्रचार की बात, सो मैं किसी भी भांति के प्रचार में उत्सुक नहीं हूं। मनुष्य को सब भांति के प्रचार से ही तो मुक्त होना है। जब चेतना सब प्रकार के प्रचार से ऊपर उठती है, तभी उसे जान पाती है "जो है"। प्रचार है किसी को संस्कारित करना, कंडीशनिंग। और अध्यात्म है-- संस्कार मुक्ति, अनकंडीशनिंग। इसलिए राजनीति का प्रचार, प्रोपेगेंडा हो सकता है। लेकिन अध्यात्म का नहीं। और जो अध्यात्म को भी प्रचार बनाते हैं, वे छद्मवेश में राजनीतिज्ञ ही हैं।
मैं प्रचारक नहीं हूं। न ही कोई उपदेशक हूं। मैं तो निद्रा तोड़ना चाहता हूं, मैं तो लोगों को उनकी मूर्च्छा से झकझोरना चाहता हूं, ताकि वे स्वयं देख सकें और सोच सकें। मैं उनके लिए नहीं सोचना चाहता हूं। प्रचारक यही करता है। उपदेशक यही करता है। वे सब मिल कर लोगों को सुलाते हैं। क्योंकि सिर्फ सोए हुए लोग ही विश्वास कर सकते हैं, नेता बना सकते हैं, गुरु बना सकते हैं। जागा हुआ व्यक्ति तो स्वयं अपना मार्ग चुनता है। वह किसी का शिष्य या अनुयायी नहीं होता है। शिष्य और अनुयायी तो सिर्फ मूर्च्छित व्यक्ति ही होते हैं। निश्चय ही सोए हुए व्यक्तियों को जगाने के प्रयास से वे नाराज होते हैं। लेकिन उनकी नाराजगी से भी मैं खुश होता हूं। क्योंकि उनकी नाराजगी भी तो जागने की ही शुरुआत है!

प्रश्नः अगर आप विरोध को खड़ा न करके संतों का सहयोग प्राप्त करें, तो क्या आपका मिशन जल्दी सफल नहीं होगा?

पहली तो बात यह कि मेरा मिशन ही विरोध खड़ा करना है। क्योंकि, उससे जन्मता है विचार। विचार का बीज है संदेह, डाउट और विचार की प्रक्रिया है द्वंद्वात्मक, डायलेक्टिकल। इसलिए विरोध मैं खड़ा करता हूं। जहां साधारणतः विरोध नहीं दिखता, वहां भी विरोध खोजता हूं। वाद-प्रतिवाद की प्रक्रिया से ही संवाद उपलब्ध होता है। इसलिए जो मेरा विरोध करते हैं, वे ही मेरे सहयोगी हैं। और मैं किसी से न सहयोग की अपेक्षा रखता हूं न असहयोग की। जिससे जो मिल जाता है, उसे ही परमात्मा का प्रसाद मान कर अनुगृहीत हो जाता हूं। और मेरा मिशन ऐसा नहीं है कि जो जल्दी सफल होते हैं।
मौसमी फूलों जैसे मिशन भी होते हैं। वे जल्दी खिलते भी हैं, जल्दी मुरझा भी जाते हैं; और ऐसे भी मिशन होते हैं, जो कि सनातन होते हैं। इसीलिए उनके साथ "मेरा-तेरा" जोड़ना भी व्यर्थ है। वे परमात्मा के ही मिशन हैं। इसीलिए मैं अक्सर कहता हूं कि मेरा कोई मिशन नहीं है। जो है प्रभु का है। और इसलिए सफलता-असफलता भी उसकी ही है। मैं तो हूं ही नहीं। वही है। अब जो उसकी मर्जी। वह जो करा रहा है, वही कर रहा हूं।
और अब रह गए संत। सो जिनका सहयोग सत्य के लिए मिलता ही है, वे ही हैं संत। सत्य के लिए सहयोग मांगना नहीं पड़ता है, और संतों से तो बिल्कुल ही नहीं। वह मिलता ही है। और मिल ही रहा है।

प्रश्नः क्या आपकी अनेक बातों से श्रोता खिन्न नहीं होते हैं?

आह! काश! वे खिन्न ही हो जावें। मैं इसके लिए ही तो भगवान से प्रार्थना करता रहता हूं। उसके लिए ही तो मेरा सारा प्रयास है। मैं उन्हें संतुष्ट नहीं करना चाहता हूं। मैं तो उन्हें सब भांति के धक्के देना चाहता हूं।
ताकि वे सोचें--सोचना सीखें। सोच-विचार की तो जैसे मृत्यु ही हो गई है। विचार को पुनरुज्जीवित करना है। और इसके लिए किसी को गालियां खाने के लिए तैयार होना ही पड़ेगा। मैं तैयार हूं।

लेकिन दुर्भाग्य कि लोगों की नाराजगी भी अत्यंत अल्पजीवी है, उनकी खिन्नता भी जैसे स्वप्न में ही है। क्योंकि वे थोड़े ही देर में फिर खर्राटे लेते हुए सुनाई पड़ते हैं। ज्यादा से ज्यादा वे करवट बदल लेते हैं और फिर सो जाते हैं। अर्थात वे मुझसे ही सहमत हो जाते हैं और सो जाते हैं। मैं उन्हें स्वयं से सहमत नहीं करना चाहता हूं। मैं नहीं चाहता हूं कि वे मुझे मान लें। क्योंकि इससे तो कोई भी भेद नहीं पड़ सकता है। वे "अ" को मानते हैं या "ब" को, यह सवाल ही नहीं है। गुरु बदलने का सवाल नहीं है। गुरु बदलना करवट बदलना है। मैं तो उन्हें जगाना चाहता हूं। ताकि वे सबसे मुक्त हो सकें। ताकि वे स्वयं हो सकें। और निश्चय ही स्वयं होना, सबसे बड़ी साधना है। इससे ही बचने को तो सब सोए हुए हैं--विश्वासों में, श्रद्धाओं में, अंधताओं में। और यदि उनके श्रद्धा-स्वप्नों से कोई उन्हें जगाता हो तो वे नाराज हों, खिन्न हों, तो यह तो स्वाभाविक ही है न? लेकिन मैं यह धन्यवाद रहित कार्य करता रहूंगा। मेरे लिए भगवान की यही आज्ञा है।

प्रश्नः धार्मिक व्यक्ति का व्यावहारिक जीवन किस प्रकार का होता है?

पहली बात तो यह है कि धार्मिक व्यक्ति के जीवन में व्यावहारिक और पारमार्थिक, ऐसे खंड नहीं होते हैं। धार्मिक जीवन अखंड जीवन है। जहां खंड हैं, वहां धर्म नहीं है। खंडित चित्त ही तो रोग है। वही तो अधर्म है। दूसरी बात यह है कि धार्मिक व्यक्ति का स्वयं का जीवन भी नहीं होता है, क्योंकि स्व के मिटने से ही तो वह धर्म को उपलब्ध होता है। धार्मिक व्यक्ति स्वयं नहीं जीता, उसमें से तो प्रभु ही जीता है। धार्मिक व्यक्ति तो बन जाता है बस माध्यम। बांसुरी ही रह जाता है वह। स्वर और संगीत उसमें से बहते हैं, लेकिन वे उसके नहीं होते।
तीसरी बात यह है कि धार्मिक जीवन के प्रकार नहीं होते हैं। जैसे सागर
का पानी सब जगह खारा है, ऐसे ही धार्मिक जीवन का स्वाद भी सब जगहों और सब कामों में एक जैसा ही है। धर्म की अंतरात्मा सदा सर्वदा एक है, एकरस है। चौथी बात यह है कि आपका सवाल बाहर से पूछा गया सवाल है। धर्म में प्रवेश करते ही ऐसे सवाल तत्काल गिर जाते हैं। धर्म अनुभूति में अद्वैत है। लेकिन बुद्धि अपनी सीमा में प्रत्येक विषय को अनिवार्यतः खंड-खंड कर देती है। क्योंकि विचार की प्रक्रिया ही विश्लेषण है। अनुभूति है सदा संश्लिष्ट और विचार है विश्लेषण, इसलिए अनुभूति और विचार का कहीं भी मिलन नहीं होता है। अनुभूति, परमार्थ और व्यवहार एक हैं, ब्रह्म और माया एक हैं। परमात्मा और पदार्थ एक हैं। मुक्ति और बंधन एक हैं। लेकिन, बीच में जरा सा विचार आया कि सब "एक" तत्काल दो हो जाते हैं। और विचार जिन्हें भी तोड़ता है, उनके बीच अलंघ्य खाई रह जाती है। फिर विचार उन्हें जोड़ने की कोशिश में भी पड़ता है, लेकिन वह काम व्यर्थ है। क्योंकि, विचार ही तो खाई है। विचार जोड़ नहीं सकता, वह तो केवल तोड़ ही सकता है। विचार का जहां अभाव है, वहां जोड़ है। वस्तुतः वहां कभी कुछ टूटा ही नहीं है।
और पांचवीं बात यह है कि जानना ही है तो सोचें मत, जीएं। सोचना जीने से बचने की तरकीब है। सोचना है सदा तट पर और जीवन है सदा सागर की गहराइयों में। छोड़ें तट और कूदें। कितने जन्मों-जन्मों से तो आप सोच रहे हैं! मैं कब से आपको तट पर ही देख रहा हूं! अब बहुत हुआ। अब तो कूदें। देखें, सुनें, कबीर क्या कह रहे हैं।
जिन खोजा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ।
मैं बौरी डूबन डरी, रही किनारे बैठ।।

प्रश्नः कहीं-कहीं पर धर्म और व्यवहार में विरोध खड़ा हो जाता है, ऐसी परिस्थिति में सही मार्ग क्या है?

पहली बात तो यह है कि धर्म और व्यवहार में कभी भी विरोध खड़ा नहीं होता है। वह असंभव है। जैसे प्रकाश और अंधकार में कभी भी विरोध खड़ा नहीं होता है, ऐसे ही जहां प्रकाश है, वहां अंधकार है ही नहीं। तब विरोध खड़ा हो ही

कैसे सकता है? उपस्थित प्रकाश और अनुपस्थित अंधकार में तो विरोध असंभव ही है न? विरोध के लिए कम से कम दोनों की उपस्थिति तो एक ही साथ होनी चाहिए न। और ऐसा भी नहीं होता है। जहां प्रकाश है, वहां अंधकार नहीं है। जहां प्रकाश नहीं है, वहां अंधकार है। असल में अंधकार का अर्थ ही है, प्रकाश का न होना। उसकी अपनी कोई सत्ता नहीं है। वह तो बस अभाव है किसी का; अनुपस्थिति है किसी की। ऐसा ही व्यवहार है। ऐसा ही संसार है। ऐसा ही अज्ञान है। ऐसा ही अधर्म है। वे सब धर्म की अनुपस्थिति के भिन्न-भिन्न नाम हैं। जब धर्म आता है, तब वे सब चुपचाप खो जाते हैं। धर्म नहीं है, तभी तक वे हैं।
दूसरी बात यह है कि उधार, सुने हुए धर्म को हम धर्म मान लेते हैं। इससे
ही कठिनाई खड़ी होती है। साधारणतः हमारे लिए व्यवहार तो है सत्य और धर्म है कोरा शब्द, इसलिए ही दोनों में विरोध खड़ा होता है। और ध्यान रहे कि यह कहीं-कहीं नहीं, कभी-कभी नहीं, वरन हर कहीं और हर पल खड़ा होता है। यही स्वाभाविक है। यह होगा ही, क्योंकि अंधकार है वास्तविक और प्रकाश है केवल विश्वास। विश्वास अंधकार को तो मिटाता ही नहीं, उलटे हमें और अंधा कर जाता है। प्रकाश चाहिए, प्रकाश का विश्वास नहीं। प्रकाश के विश्वास से अंधकार नहीं मिटता है। धर्म चाहिए, धर्म का विश्वास नहीं। धर्म से व्यवहार रूपांतरित होता है और परमार्थ और व्यवहार एक ही हो जाते हैं। या ऐसा कहें तो भी ठीक है कि व्यवहार ही रह जाता है। और जो शेष रह जाता है, उसमें कोई द्वंद्व नहीं है, इसलिए कोई दुविधा भी नहीं है।
तीसरी बात यह है कि अलग-अलग परिस्थिति में अलग-अलग मार्ग नहीं हैं और
न ही अलग-अलग सहीपन है। मार्ग तो एक ही है और जो सही है, वह भी एक ही है। और उस एक का नाम ही धर्म है। उसे जानते ही सभी परिस्थितियां मूलतः समान हो जाती हैं। आकार तो उनके भिन्न रहते हैं, लेकिन आत्मा भिन्न नहीं रह जाती है।
जैसे एक अंधा आदमी सोच सकता है कि अलग-अलग अंधकारों में अलग-अलग प्रकाश आवश्यक होते होंगे या अलग-अलग स्थितियों के मार्ग खोजने के लिए अलग-अलग आंख होती होगी, ऐसा ही हमारा यह सोचना भी है।
चौथी बात यह है कि धर्म को खोजें। धर्म और व्यवहार में सामंजस्य को नहीं। सामंजस्य की खोज ही बताती है कि धर्म का अभी पता नहीं है। धर्म के आगमन पर तो कभी भी सामंजस्य नहीं खोजना पड़ता है। क्योंकि, सामंजस्य के लिए भी वैसा ही द्वैत आवश्यक है जैसा कि संघर्ष के लिए। और धर्म का आगमन अद्वैत का आगमन है। फिर तो जो है, वही परमार्थ है और वही व्यवहार है। धर्म का आगमन अविरोध का आगमन है। इसलिए फिर न विरोध है किसी से, न सामंजस्य ही। पांचवीं बात यह है कि धर्म को, स्वयं को छोड़ और कहीं न खोजें, क्योंकि
और कहीं से भी मिले धर्म से आपकी समस्या नहीं मिट सकती है। वस्तुतः तो और कहीं से मिले धर्म से ही तो वह समस्या पैदा हुई है। उधार धर्म अनिवार्यतः समस्या है, ऐसी समस्या जिसका कि कोई भी समाधान नहीं है। क्योंकि उधार धर्म स्वयं को समाधान मान लेता है, जो कि वह नहीं है। और ऐसी समस्या का कोई भी समाधान नहीं है, जो कि स्वयं को ही समाधान मानती है। ऐसी बीमारी का इलाज ही क्या हो सकता है जो कि स्वयं को स्वास्थ्य समझती है? लेकिन स्वयं धर्म निश्चय ही समाधान है। पर वह मिलता है समाधि से। समाधि के अतिरिक्त समाधान और कहीं से मिल भी कैसे सकता है?
धर्म को खोजें अर्थात समाधि को खोजें। शास्त्र से बचें, शब्द से बचें, विचार से बचें। निर्विचार ही द्वार है। शून्य में ही सत्य है, वही है धर्म। उसे जान कर फिर कुछ भी जानने को शेष नहीं रह जाता है और उसे जानते ही सब समस्याएं गिर जाती हैं, सब सवाल मिट जाते हैं।

प्रश्नः गृहस्थ के लिए ब्रह्मचर्य की क्या परिभाषा है?

ब्रह्मचर्य की परिभाषा तो एक ही है--ब्रह्म जैसी चर्या। वह गृहस्थ या अगृहस्थ के लिए भिन्न-भिन्न नहीं हो सकती है। ब्रह्मचर्य अत्यंत विधायक, पाजिटिव अवस्था है। वह निषेधात्मक, निगेटिव स्थिति नहीं है। लेकिन, सदा

से ही उसे निषेधात्मक समझा जाता रहा है। इसीलिए व्यर्थ ही, बहुत सी भ्रांतियां पैदा हो गई हैं। ब्रह्मचर्य से समझा जाता रहा है--काम-निरोध! इसीलिए, आपके मन में गृहस्थ और अगृहस्थ के लिए ब्रह्मचर्य-भेद का भी सवाल उठा है। अगृही को तो हम पदेन ही ब्रह्मचारी मान लेते हैं, क्योंकि काम-तृप्ति का स्वाभाविक साधन उसके पास नहीं है। लेकिन काम, सेक्स, अस्वाभाविक साधनों से भी तृप्त हो लेता है। और काम के लिए अन्य की उपस्थिति भी अनिवार्य नहीं है। काम आत्म-काम, ऑटो-इरोटिक भी बन जाता है। फिर काम के लिए ऐच्छिक-तृप्ति भी अनिवार्य नहीं है। वह अनैच्छिक, नॉन-वालेंटरी तृप्ति का मार्ग भी खोज लेता है। जैसे, स्वप्नों में। इसलिए, काम-ऊर्जा, सेक्स एनर्जी के स्खलन के लिए गृही या अगृही में कोई भेद नहीं है। भेद है भी तो इतना ही कि गृही के विकृत, परवर्टेड होने की संभावना अगृही से कम है।
ब्रह्मचर्य की निषेध-दृष्टि ने ब्रह्मचर्य की परम पावन धारणा को किसी भी भांति "वीर्य-रक्षण" की अत्यंत निएन स्थिति प्रदान कर दी है। ऐसे ब्रह्मचर्य भी अत्यंत कामुक, सेक्सुअल बन कर रह गया है। मैं ऐसी स्थिति के आमूल विरोध में हूं। मेरी दृष्टि में ब्रह्मचर्य काम-दमन, सेक्स सप्रेशन नहीं है। दमन से चित्त कभी भी काम का अतिक्रमण नहीं कर पाता है। दमन तो एक दुष्टचक्र है, जिसे कि शुरू करना तो आसान है, लेकिन जिसके बाहर होना अति दुरूह है। क्योंकि, जिसे हम दबाते हैं, वह और भी गहरे अर्थों में हमारे चित्त का हिस्सा हो जाता है। दमन चेतन वृत्तियों को अचेतन बनाने की प्रक्रिया के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। और इसलिए दमन आधारित ब्रह्मचर्य, मानसिक व्यभिचार मात्र बन कर रह जाता है। दमन नहीं, चाहिए अतिक्रमण, ट्रांसेंडेंस। काम-ऊर्जा को दबाना नहीं है, वरन उसे और नये आयामों में गतिमान करना है। काम-ऊर्जा अमूल्य संपदा है। उससे संघर्ष नहीं करना है। वरन उसे सृजनात्मक, क्रिएटिव बनाना है। संघर्ष से आत्मविग्रह होता है, क्योंकि, हम और वह ऊर्जा दो नहीं हैं। वह ऊर्जा ही हम हैं। हम ही वह ऊर्जा हैं। काम भी राम है।
ध्यान के मार्ग से काम के राम होने का दर्शन उपलब्ध होना शुरू होता है। इसलिए, मेरे लिए प्राथमिक रूप से ब्रह्मचर्य ध्यान से प्रारंभ होता है। ध्यान अर्थात आत्म-रमण। स्वयं में होना। यौन अर्थात पर-रमण। दूसरे में होना। फिर यह होना चाहे वास्तविक हो, चाहे काल्पनिक! ध्यान का रस, पर-रमण से मुक्त करता है। आत्म-रमण का आनंद, पर-रमण के आनंद को एकदम फीका और अर्थहीन बना देता है। और इस भांति काम-ऊर्जा स्वयं के आयाम, डायमेंशन में प्रवाहित होने लगती है।
काम-ऊर्जा के प्रवाह की दो दिशाएं हैं--यौन और योग। यौन बहिर्गामी है। योग अंतर्गामी है। बहिर्गामी को दबाना नहीं है। अंतर्गामी को खोलना है। क्योंकि, बहिर्गामी को दबाने से अंतर्गामी नहीं खुलता है। विपरीत, बहिर्गामी ही विकृत होकर प्रवाहित होने लगता है। लेकिन, अंतर्गामी के खुलने से बहिर्गामी अनायास ही तिरोहित हो जाता है।
जीवन ऊर्जा के अंतर्गमन के इस अनुभव का नाम ही ब्रह्मचर्य है। निश्चय
ही इस अंतर्यात्रा के साथ ही सारी चर्या बदल जाती है। वह अहं-केंद्रित न होकर ब्रह्म-केंद्रित हो जाती है। यौन अहं-चर्य है। योग ब्रह्मचर्य है। यौन भी मिलन है--"पर" से। योग भी मिलन है--"स्व" से। "पर" माया है। "स्व" ब्रह्म है।

हसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानम् पांचवां प्रवचन

ध्यान और रेचन

प्रश्नः कई लोगों के मन में ऐसा ख्याल है कि तीन दिनों के शिविर से क्या हो सकता है। इंसान के जीवन में इतनी आसानी से कैथार्सिस वगैरह हो जाती है और इसकी कोई आवश्यकता वगैरह है कि ध्यान खुद ही अपने आप ही आ सकता है? इसके बारे में कृपया बताएं।

ध्यान आ सकता है, स्वयं से भी आ सकता है, लेकिन पृथक्करण से नहीं आएगा। बड़ा सवाल यह नहीं है कि हम अपने मन को एनालाइज कर दें, क्योंकि यह पृथक्करण विश्लेषण करते वक्त कहीं हमारा मन ही तो नहीं है। और यह सारा पृथक्करण हमारे ही मन को दो खंडों में तोड़ देता है। तो न तो पृथक्करण से संभव है कि मन एक हो जाए, न ही चिंतन-मनन से संभव है कि एक हो जाए। क्योंकि ये सारी क्रियाएं जिस मन से चलने वाली हैं, उसी मन को बदलना है।
एक ही व्यवस्था से हो सकता है कि न तो हम पृथक्करण करें, न हम चिंतन-मनन करें, वरन मन के प्रति हम धीरे-धीरे जागरूक होते जाएं।
जागरूक होने का अर्थ यह है कि हम कोई निर्णय नहीं लेते कि क्या भला है, क्या बुरा है।
हमें कोई पक्ष-विपक्ष में, मन का ही हिस्सा बचाना है या अलग रखना है, ऐसी भी कोई धारणा नहीं है। जैसा भी मन है, बिना किसी भाव के, बिना किसी पूर्व-धारणा के हम इस मन के प्रति जागते चलें। अगर जागरण में थोड़ा सा भी पक्षपात हुआ मन में, तो मन खंड-खंड हो जाएगा। तब दो हिस्से हम तोड़ लेंगे, अच्छे और बुरे का हिस्सा हम अलग कर लेंगे। और जैसे ही मन टूट रहा है कि ध्यान असंभव है। ध्यान का अर्थ ही है कि मन की समग्र अवस्था मिल जाए, टोटल अवस्था मिल जाए। तो अगर हम बिना किसी पूर्व-धारणा के, निर्णय के, अच्छे- बुरे के ख्याल के, शुभ-अशुभ के, जैसा भी हो, इसके प्रति मेरे होने के दोढंग हो सकते हैं। जैसा भी मैं हूं, इसके प्रति मैं सोया हुआ हो सकता हूं और जैसा भी हूं, उसके प्रति जागा हुआ भी हो सकता हूं। निर्णायक नहीं, कोई जजमेंट नहीं। जो भी मैं कल तक करता रहा हूं वह मैं सोते-सोते करता रहा हूं। आप पर क्रोध किया है तो बिल्कुल सोए हुए किया है। ऐसे ही हुआ कि जब हो चुका है तो मुझे पता चला है कि क्रोध हो गया। जब हो रहा था, तब पता ही नहीं चला। पृथक्करण वाला आदमी कहेगा--क्रोध बुरा है, इसे मन से अलग कर लें। चिंतन-मनन वाला आदमी कहेगा कि क्रोध बुरा है। उसका वही पक्ष होगा। जागरण, अप्रमाद की जो व्यवस्था है, अवेयरनेस की जो व्यवस्था है, वह इतना कहेगी-- क्रोध हुआ है। और मैं दुखी क्रोध की वजह से नहीं हूं, दुखी मैं इस वजह से हूं कि मेरे सोते से हुआ है। तो मेरी लड़ाई क्रोध से नहीं है, मेरी लड़ाई इस सोएपन से है।
अगर हम अपने सोएपन से लड़ते चले जाएं, धीरे-धीरे हमारी प्रत्येक क्रिया हमारे होश में होने लगे, तो बड़े मजे की बात है कि कुछ क्रियाएं होश में हो ही नहीं सकतीं। जैसे क्रोध नहीं हो सकता, जैसे घृणा नहीं हो सकती, हिंसा नहीं हो सकती। तो मैं, मैं तो कहता ही ऐसा हूं कि जो जागरूक अवस्था में हो सके, वही होना है, वही शुभ है। और जिसके होने के लिए निद्रा अनिवार्य हो, वही पाप है, वही अशुभ है। यानी सोया हुआ होना जिसके लिए अनिवार्य भूमिका बने, जिसके बिना हो ही न सके, वही पाप है।
तो स्वयं ध्यान फलित हो सकता है, व्यवस्था जागने की करनी पड़ेगी। साधारणतः यह संभव नहीं हो पाती। क्योंकि हमारा वह जो सोया हुआ चित्त है वह इसका स्मरण नहीं रख पाता कि हम जागे रहें। वह इस बात के प्रति भी सो जाता है। कभी-कभी ख्याल आता है कि निर्णय किया था कि जागते रहेंगे, लेकिन यह निर्णय भी तो हमने जागे हुए नहीं किया है। यह निर्णय भी तो हमारी नींद का ही निर्णय है। इसलिए यह बात तो बिल्कुल ठीक लगती है, लेकिन हो नहीं पाती है। हो सकती है, वह सिर्फ संभावना है। और कभी लाख, दो लाख आदमी में एक-दो

आदमी को हो भी जाती है। साधारणतः यह बात लगेगी बिल्कुल उचित, लेकिन हो नहीं पाएगी।
न होने में दो-तीन कारण हैं--एक कारण तो यह होगा कि हमारा जो निर्णय है जागे होने का वह भी सोए हुए आदमी का निर्णय है। हम इसे भी तो चौबीस घंटे याद नहीं रखने वाले हैं। यह भी तो हमें भूल जाएगा पांच क्षण के बाद। अब यह हमने निर्णय ले लिया है, निर्णय लेकर हम चुके भी नहीं हैं और घटना आ जाएगी और हम भूल जाएंगे कि हमने निर्णय लिया है।
एक तो कठिनाई यह है कि सोए हुए मन से लड़ना है, लेकिन सोया हुआ मन ही तो निर्णय लेगा। दूसरी कठिनाई यह है कि हमारे मन का जो अर्जित संस्कार है, वह जो कंडीशनिंग है, वह बाधा डालेगी। यानी वह ऐसे ही है जैसे हम एक बीमार आदमी से कहें कि तुम स्वस्थ हो जाओ। राजी वह भी होगा। बीमार भी स्वस्थ होना ही चाहता है। वह भी कहेगा, बिल्कुल सहमत हैं आपसे। बात बिल्कुल ठीक है। लेकिन ये जो बीमारी के कीटाणु भरे पड़े हैं, यह जो बुखार चढ़ा हुआ है, इसका क्या करना है? स्वस्थ तो मुझे भी होना है।
जब भी हम किसी आदमी से बात कर रहे हैं तो वह आदमी खाली नहीं है, वह आदमी भरा हुआ है। इस जन्म के संस्कार हैं, और अगर हम और गहरे देखें तो और जन्मों के संस्कार हैं। वे सब भरे हुए हैं। वह बोझ उसके सिर पर है। यह जो बोझ है, यह बाधा डालेगा। क्योंकि कल तक जो मैंने किया है, अनंत बार जिसे किया है, उसकी गहरी पकड़ और उसके सांचे बन गए हैं। उसके ग्रूव्ज हैं। मुझे पता ही नहीं चलता है और वही हो जाता है। क्योंकि स्वभावतः मन का नियम है कि जहां लीस्ट रेसिस्टेंस है, मन वही करेगा। जीवन का यही नियम है। अगर मुझे यहां से दरवाजे तक पहुंचना है तो मैं सबसे कम दूरी चुनूंगा। स्वभावतः, सीधी से सीधी रेखा चुनूंगा। सीधी रेखा का मतलब यह है कि दो बिंदुओं के बीच में निकटतम जो दूरी है, कम से कम जो दूरी है। उसको हम पागल कहेंगे जो पच्चीस चक्कर लगा कर उस जगह पहुंचे। और निकटतम और सरलतम वही है जो मैंने किया है। क्रोध मैंने किया है करोड़ों बार। अक्रोध मैंने कभी किया नहीं। तो करोड़ों बार किए गए क्रोध की अपनी नहर बनी है। इधर उठी नहीं शक्ति कि उधर बही नहीं।
वह नहर बिल्कुल तैयार है, वह प्रतीक्षा कर रही है। दूसरी कोई नहर नहीं है। तो आल्टरनेटिव बहुत कम है। संभावना यही है कि जब क्रोध की स्थिति उत्पन्न हो, तब आप फिर क्रोध कर जाएं। हालांकि फिर पछताएंगे, यह पछताने का भी ग्रूव है। यह हर बार क्रोध के बगल की चैनल है, जो कि हर बार आपने क्रोध किया है और हर बार आप पछताए भी हैं। तो क्रोध का भी एक रास्ता बना हुआ है, फिर क्रोध के बाद पछताने का भी रास्ता बना हुआ है। वह इसी की छाया है। इसमें आप कोई नया काम नहीं कर रहे हैं। पहले भी क्रोध किया था, पहले भी पछताए थे। अब फिर क्रोध किया है, फिर पछताए। उसी के पास कसम खाने का रास्ता भी बना हुआ है और वे सब बने हुए रास्ते हैं। पहले भी कसम खा चुका कि क्रोध न करूंगा, अब फिर कसम खा लेंगे कि क्रोध न करूंगा। लेकिन एक बात बिल्कुल ख्याल में न आएगी कि वही हो रहा है, जो हो चुका है बहुत बार। और जितनी बार दोहरता जाएगा उतना मजबूत होता चला जा रहा है एक्ट।
तीसरी बात, जो कुछ भी हमने किया है उसे भी कभी पूरा नहीं किया है। क्रोध भी हमने कभी पूरा नहीं किया। घृणा भी हमने कभी पूरी नहीं की। दुश्मन भी हम कभी पूरे नहीं हुए। किसी को मार डालना जरूर चाहा है, मार ही नहीं डाला। खुद भी आत्महत्या करनी चाही, लेकिन की नहीं है। तो जो भी हमने करना चाहा है, उसका एक हिस्सा हमने दबाया भी है। वह हमारा सप्रेशन का बोझ है। वह प्रतीक्षा कर रहा है हर वक्त। वह हमेशा बल देता है उसी को करने को जो आपने रोक लिया है। तो इधर नहर खुदी है, इधर पीछे से फोर्सेस इकट्ठी हैं, बड़ी शक्तियां इकट्ठी हैं जो कहती हैं कि बस करो क्रोध, क्योंकि वहां भरा हुआ बोझ, वह निकलना चाहता है। ये तीन चीजें आपके, सब निर्णय आपके तोड़ देंगी। यहां निकास मिल पाएगा।
इन तीनों से निपटने के लिए जो मैं ध्यान कह रहा हूं, वह है कैथार्सिस। इसलिए कैथार्सिस उसमें मेरा पहला हिस्सा है। कैथार्सिस में दो बातें हैं। एक तो जो मुझमें भरा है, पुराना दबाया हुआ है, उसको मुक्त करना है,

उसका रेचन करना है। अब यह जो पुराना दबाया हुआ है, अगर किसी के ऊपर इसका रेचन किया जाए, तो फिर उपद्रव शुरू हो जाएंगे। अगर मेरे भीतर दबाए हुए क्रोध की एक मात्रा है, वह अगर मैं आप पर निकालूं तो आप बैठे तो नहीं रहेंगे। आप भी जवाब देंगे। आप भी मेरे जैसे आदमी हैं। आप भी लकड़ी लेकर खड़े हो जाएंगे। तो मैं जितना निकालूंगा, उतना फिर उससे दुगना आप पैदा करवा देंगे। फिर उसे दबाना पड़ेगा, क्योंकि सिलसिला कहीं तो तोड़ना पड़ेगा। फिर दबा लूंगा। तो किसी पर निकालने से तो रेचन कभी नहीं हो सकता है। किसी पर तो हम निकालते ही रहे हैं और रेचन नहीं हुआ है।
इसलिए कैथार्सिस इन वैक्यूम है, कैथार्सिस अनडायरेक्टेड है। इसकी जरूरत है कि मैं निकालूंगा क्रोध, लेकिन किसी पर नहीं, हवा में निकालूंगा, खालीपन में निकालूंगा, जिसमें कि लौटती प्रतिक्रिया न हो उसकी। तो जो लौटती प्रतिक्रिया अगर न हो तो मैं नया अर्जन न करूं। और एक दूसरी घटना घटेगी, अगर हवा में मेरा क्रोध निकल जाए, जो कि साधारणतः आपको पागलपन मालूम पड़ेगा, इसलिए मास मेडिटेशन पर मेरा जोर है शुरू में। अकेले में आप बिल्कुल पागल मालूम पड़ेंगे। अकेले में आपको लगेगा--मैं यह क्या कर रहा हूं? और बड़े मजे की बात है कि अगर दो सौ लोग वही कर रहे हैं, तो फिर आप पागल नहीं मालूम पड़ेंगे; क्योंकि आपको लग रहा है कि मैं ही नहीं कर रहा हूं, ये एक सौ निन्यानबे लोग और कर रहे हैं। असल में हमारे पागल और न पागल होने का जो निर्णय है, वह भी समूह से दिया हुआ निर्णय ही है। किसी मुल्क में अगर मिल कर दो आदमी नाक रगड़कर नमस्कार करते हैं, तो वह पागलपन नहीं है, क्योंकि पूरा मुल्क करता है। आज बंबई में जाकर किसी को नमस्कार नाक रगड़ कर करें तो पागल हैं। वह भी आदमी चौंकेगा, आस-पास के लोग भी चौंक जाएंगे। लेकिन फर्क क्या है? फर्क सिर्फ इतना है कि हम यहां अकेले पड़ गए हैं और वहां पूरी भीड़ वही कर रही है। अफ्रीकन औरत है, वह सिर घुटा कर सुंदर हो जाती है, क्योंकि बाकी सारी औरतें भी सिर घुटाकर सुंदर होती हैं। हिंदुस्तान में कोई औरत सिर घुटाने को राजी नहीं होगी। वे कहेंगी, मुझे कोई कुरूप बनाना है! मुझे कोई भूत-प्रेत बनाना है! अफ्रीकन औरत क्यों कर पा रही है? बाकी सारी भीड़ वही कर रही है। असल में हमारे पागल और गैर-पागल होने का पता ही हमें सिर्फ इसलिए चलता है कि हम अकेले तो नहीं पड़ गए।
तो इसलिए मेरा जोर है कि यह जो कैथार्सिस है, आप अकेले में उसे नहीं कर पाएंगे। कर सकें तो अच्छा है, मुझे कोई एतराज नहीं है कि अकेले में कोई कर सके। लेकिन कर नहीं पाएगा अकेले में। उसे खुद ही लगेगा कि मैं घूंसा किसको मार रहा हूं! क्योंकि हमारी सदा की आदत जो है, वह किसी को घूंसा मारने की है। हवा में घूंसा मारने की... हवा में घूंसा मारने से हम पागल मालूम पड़ेंगे कि यह क्या पागलपन कर रहे हैं! हवा में घूंसा हमने सिर्फ पागलों को मारते देखा है। हवा में चिल्लाते सिर्फ पागलों को देखा है। नहीं कोई मौजूद है, बोलते सिर्फ पागलों को देखा है। हम तो सब समझदार कोई हो तो बोलते हैं, कोई हो तो घूंसा मारते हैं, कोई हो तो क्षमा मांगते हैं, कोई हो तो चिल्लाते हैं, कोई कारण हो तो हम बोलते हैं, कोई कारण हो तो हम हंसते हैं। अकारण तो हम कुछ भी नहीं करते। अगर ठीक से समझें, तो अकारण करने वाले आदमी को हम पागल कहते हैं। इसलिए एक आदमी बैठा है यहां, अचानक यहां हंसने लगे खिलखिला कर, तो हम कहेंगे पागल है, क्योंकि हमने कोई बात भी न की थी, अभी तो कोई चर्चा न थी। चर्चा हो, खूंटी हो टांगने को, तो फिर हंसे, तो हम कहेंगे चलेगा।
तो इसलिए कैथार्सिस जो है, वह मेरी दृष्टि में मास ही शुरू की जा सकती है। इतने हिएमत के बहुत कम लोग हैं कि वे अकेले में कैथार्सिस कर सकें। और अकेले में किसी न किसी तरह का रेसिस्टेंस बना ही रहेगा। अकेले में तो, क्योंकि अकेले ही आप और आपको पूरे वक्त यह ख्याल बना ही रहेगा कि जो मैं कर रहा हूं, यह क्या कर रहा हूं? कोई पागलपन तो नहीं कर रहा हूं!
लेकिन दो हजार आदमी कर रहे हैं, दस हजार आदमी कर रहे हैं, इसलिए मेरा इरादा ही यह है कि इसको जितने बड़े व्यापक पैमाने पर किया जाए, दस हजार आदमी करेंगे, आप और भी ज्यादा आसान अनुभव करेंगे। तब आपको पागल होने का डर न रहा। दस हजार आदमी पागल नहीं हैं। और आप वह सब चेहरे देख रहे हैं जो पागल

नहीं हैं। आपको अपने चेहरे पर शक हो सकता है। सब आदमियों कोशक होता है अपने पर कि वे कभी पागल हो सकते हैं। क्योंकि भीतर जो वे चलते देखते हैं, वह है भी पागल होने के निकट। वहां सदा ही कहना चाहिए वॉलकैनो पर ही हम बैठे हुए हैं। लेकिन जब आप देखते हैं कि मजिस्ट्रेट गांव का भी कर रहा है और वकील भी कर रहा है और डाक्टर भी कर रहा है और प्रोफेसर भी कर रहा है और वृद्ध भी कर रहा है, जवान भी कर रहा है, यह आपके ख्याल से तत्काल बात उतर जाती है कि कोई पागलपन हो रहा है। यह उतर जाना बहुत जरूरी है, नहीं तो कैथार्सिस न हो पाएगी। इसलिए कैथार्सिस मास ही हो सकती है।
अभी पश्चिम में ग्रुप थैरेपी पर बहुत जोर बढ़ा है। मैं मानता हूं कि वह जोर उचित है। एक आदमी को अकेले में उसके मस्तिष्क को ठीक करना कठिन पाने लगे हैं वे भी। लेकिन एक ग्रुप में उसे ठीक करना ज्यादा आसान हो जाता है। क्योंकि ग्रुप में वह एट ई.ज हो जाता है। तो यह थोड़ा ख्याल में ले लेने जैसा है कि एक आदमी अकेले में स्वस्थ है, साधारणतः जिसको हम नार्मल आदमी कहते हैं, उसे भी अकेले में हम दो-चार साल एक कमरे में डाल दें, तो वह पागल हो जाएगा। यह वही आदमी है, अकेला क्या करेगा। अकेला इसको पागल नहीं बना सकता अकेलापन, लेकिन यह पागल क्यों हुआ जा रहा है? असल में यह वे ही काम इस अकेलेपन में करना शुरू करेगा, जो इसने किसी के साथ किए थे। लेकिन तब वजह थी इसके पास, अब बेवजह हो जाएगा मामला। तब यह क्रोधित हुआ था, इसने कहा था कि क्रोध का कारण है, क्योंकि लड़के ने गलती की है।
अब भी क्रोध आएगा, क्योंकि क्रोध बाहर से बंधी हुई चीज नहीं है, वह हमारी भीतरी अवस्थाओं से है। अब भी क्रोध आएगा। अब कोई लड़का नहीं है, कोई पत्नी नहीं है, दीवालें हैं, अब किसको क्रोध करेगा? कुछ दिन रोकेगा, दबाएगा, फिर वश के बाहर हो जाएगा। फिर यह दीवाल को गालियां देने लगेगा। दीवालों को जिस दिन इसने गाली दी, यह भी जानेगा, मैं पागल हो गया हूं, बाहर के लोग भी जान रहे हैं कि यह आदमी पागल हो गया है, क्योंकि अब यह अकारण काम कर रहा है।
कैथार्सिस का मतलब है, जो हमने सदा आब्जेक्ट के साथ किया है, कॉ.जल था,
अब उसे हम अनकॉ.जल कर रहे हैं, अनडायरेक्टेड। तो इसके लिए बड़ा ग्रुप हो, तो आसान हो जाएगा, एक।
दूसरी बात कि अगर यह हमने अकारण किया, तो जो क्रोध सदा कारण से चलता था, वह बंधी हुई नहर से बहता था। बंधी हुई नहर सदा डायरेक्शन में होती है। अब यह अकारण है, ओवरफ्लो होगा। अनडायरेक्टेड होने की वजह से इसकी कोई चैनेलाइजेशन नहीं होगी। क्योंकि आप पर अगर मुझे क्रोध करना था, तो आपके और मेरे बीच एक रास्ता बनता है क्रोध का। लेकिन हमें किसी पर क्रोध नहीं करना है, इसलिए डायमेंशनलेस होगा। और कैथार्सिस जो है वह डायमेंशनलेस ही हो सकती है। अगर इसमें डायमेंशन है तो फिर कैथार्सिस नहीं हो सकती। यह ओवरफ्लो होगा। यह पूर की तरह होगा, बाढ़ की तरह होगा, जो किनारे तोड़ देगा। किनारे टूट जाने जरूरी हैं तभी आप पूरे खाली हो सकते हैं, एक। क्योंकि इतना क्रोध है जन्मों-जन्मों का, इतनी वासना है, इतना काम है, वह सब है इकट्ठा। वह पूरा कर देना चाहिए।
दूसरा, जब यह बांध तोड़ कर बहता है तो फिर इसके कोई रास्ते नहीं बनते।
जब यह बह जाता है तो जगह खाली छूट जाती है, इसके पीछे जगह खाली हो पाती है और बंधे रास्ते नहीं रह जाते हैं। और एक दफे आपने क्रोध को अगर अकारण बहते देखा, एक बार भी अनुभव कर लिया अकारण तो अब आप कारण न खोजेंगे कभी क्रोध के लिए। और एक बार आपने उसको सारे रास्ते तोड़कर बहते देख लिया, तो वह जो पुराने बंधे हुए रास्ते थे, वे नष्ट हो गए, वे टूट गए। पुराने घाट टूट गए, पुराना पश्चात्ताप टूट गया, प्रायश्चित्त टूट गया, वह गया सब।
यह मन खाली हो जाए आदत से और दमन से--दोनों से खाली हो जाए, तो फिर जिसको मैं जागरूकता कह रहा हूं, वह सरल बहना हो जाएगा।
अब लोगों को लगता है सदा ऐसा कि तीन दिनों में कैसे हो जाएगा? समय के बाबत भी हमारी बड़ी अजीब धारणाएं हैं। असल में हमें यह ख्याल नहीं है कि कोई भी टेक्नीक कम विकसित हो, तो ज्यादा समय लेती है। बैलगाड़ी में चलता था जो आदमी उसकी कल्पना में नहीं हो सकता था कि घंटे भर में दिल्ली पहुंच

जाएगा वह। घंटे भर में दिल्ली पहुंचने की कोई आंतरिक कठिनाई नहीं है। बैलगाड़ी के टेक्नीक की तकलीफ है उसके दिमाग में। उसका जो टाइम स्केल है वह बैलगाड़ी का है। वह अनुभव से कह रहा है कि यह हो ही नहीं सकता है कि घंटे भर में दिल्ली आप पहुंच जाएंगे। और यह तो हो ही नहीं सकता कि चांद पर आप पहुंच जाएंगे। क्योंकि बैलगाड़ी को चांद पर ले कैसे जाइएगा? आज से सौ साल पहले सिर्फ बच्चों की कहानियां थीं--कहानियां लिख सकते थे चांद पर पहुंचने की। कोई बुद्धिमान आदमी, कोई प्रौढ़ आदमी यह बात नहीं करता कि यह क्या बचकानी बातें कर रहे हो? क्योंकि हमारे पास जो साधन थे यात्रा के, उनसे कोई संबंध ही नहीं जुड़ता था।
ठीक वैसे ही ध्यान की जो स्थिति है वह करीब-करीब वहीं ठहर गई है, जहां बैलगाड़ी ठहरी थी। यानी जिस वक्त बैलगाड़ी हमारा आम वाहन थी और घोड़ा हमारा तेज से तेज वाहन था, उस जमाने में ध्यान ने जो टेक्नीक विकसित किए थे, वे वहीं ठहर गए। उनमें कोई विकास नहीं हुआ। बैलगाड़ी तो हवाई जहाज बन गई, लेकिन ध्यान वहीं ठहरा हुआ है! अब भी जब हम ध्यान को खोजने जाते हैं तो हम स्वभावतः महावीर में खोजेंगे, पतंजलि में खोजेंगे। लेकिन हमको पता नहीं, पतंजलि बैलगाड़ी में चलता था और पतंजलि का टाइम स्केल है, वह बैलगाड़ी का टाइम स्केल है। और अगर बैलगाड़ी की दुनिया में विकसित की गई ध्यान की पद्धतियों की चर्चा आप जेट की दुनिया में करेंगे तो आप अपने हाथ से ध्यान को हरवाने जा रहे हैं। तो उस जमाने में बिल्कुल सहज थी यह बात कि ध्यान एक जन्म में उपलब्ध नहीं होता, तीन दिन तो बहुत थोड़े हैं, एक जन्म भी छोटा था। ध्यान एक जन्म में उपलब्ध होता नहीं, जन्मों-जन्मों की बात है।
जिस समय की गति पर हम जी रहे थे, वहां यह बात मौजूं थी। लगता था कि ठीक है, ऐसा ही होगा। और कोई उपाय भी नहीं था इसको समझने का। जिन्होंने पाया था वे भी कहते थे कि जन्मों-जन्मों की यात्रा है। वे भी गलत न कहते थे, अनुभव से ही कहते थे। लेकिन इसमें कारण कोई ध्यान की, कोई इनटेंसिव टेक्नीक है। समय से कोई लेना-देना नहीं है ध्यान को। न गति से समय को कुछ लेना-देना है। समय और गति के बीच में टेक्नीक निर्धारित होता है कि क्या होगा। अगर हम आयुर्वेद की दवा आपको देते हैं तो उसका समय होगा। वह असल में बैलगाड़ी के वक्त में विकसित हुई थी। एलोपैथी का इंजेक्शन भी उतना समय नहीं लेगा। वह बैलगाड़ी के जमाने का विकास नहीं है।
मेरी अपनी समझ यह है कि इस जगत में जब भी एक स्तर पर गति बढ़ती है तो सारे स्तर की गतियों को बढ़ना चाहिए, अन्यथा वह असंगत हो जाती हैं व्यवस्थाएं। अब जैसे कि पश्चिम में फ्रायड ने जो मनोविश्लेषण विकसित किया था, पचास-साठ साल पहले, वह हारने लगा, क्योंकि उसका टाइम स्केल बहुत लंबा है। अगर फ्रायडियन एनालिसिस करवानी है तो तीन साल भी लग सकते हैं, दस साल भी लग सकते हैं। तो तीन साल तो लगने ही वाले हैं। तो गरीब आदमी तो करवा ही नहीं सकता। और दो-तीन साल जो अफोर्ड कर सके, निरंतर हर सप्ताह कम से कम तीन सिटिंग दे सकते हैं और खर्चीला है। तो फ्रायड अब चल नहीं सकता आगे। क्योंकि उसका जोढंग है, बिल्कुल बैलगाड़ी वाला है। तीन साल में अगर एक मानसिक आदमी की थोड़ी सी तकलीफ है उसको तीन साल लगें इलाज में, तो बीमारी तो एक तरफ रही, इलाज बड़ी बीमारी हो गई। यह इलाज नहीं लागू किया जा सकता। कितने लोगों के पास इतना समय है, कितने लोगों के पास इतना पैसा है, जो तीन साल छोटी-मोटी मानसिक बीमारी के लिए व्यवस्था दें! यह नहीं चल सकता है।
तो निरंतर इधर पिछले पंद्रह वर्षों में मनसशास्त्री को तीव्र गतियां खोजनी पड़ी हैं कि कैसे जल्दी हो सके। जो आदमी एक-एक मिनट बचा रहा है, जो एक-एक मिनट बचाने के लिए जीवन दांव पर लगाए हुए है, उस आदमी से आप कह रहे हैं कि तीन साल तुएहारा मानसिक विश्लेषण करने में लगाएंगे, तो वह कहेगा कि वह अगले जन्म में मिलेगा।
लेकिन तीन साल फिर भी समझ में आ रहा है। हम इस मुल्क में ध्यान के लिए
जो भाषा बोलते हैं, वह जन्मों की बोलते हैं!
मेरा अपना मानना है कि यह कोई सवाल नहीं है। यह सिर्फ टेक्नीक अविकसित है। जिस टेक्नीक की मैं बात कर रहा हूं, इसको अगर चौबीस घंटे किया जाए तीन दिन, तो तीन दिन बहुत हैं। चौबीस घंटे अगर इसको तीन दिन किया जाए,

तो तीन दिन थोड़े नहीं हैं, थोड़े जरूरत से ज्यादा हैं और आपको भारी पड़ सकते हैं। क्योंकि कैथार्सिस है एक तो यह। यह कैथार्सिस साधारण घटना नहीं है। अगर इसे बहुत लंबे अर्से पर निकाला जाए। अगर इसमें हम तीन दिन की जगह तीन साल लगाएं, तो इतना थोड़ी-थोड़ी मात्रा आपसे निकलेगी कि उतनी मात्रा आप रोज पैदा कर लेंगे। इसको लंबाया नहीं जा सकता।
समझ लें कि इस घर को हम इतने झाड़ें, इतने आहिस्ते झाड़ें कि झाड़ने में चौबीस घंटे लग जाएं, तो जब दूसरे दिन हम झाड़ कर चुकें, तब तक पाएं कि कचरा घर में आ गया। इसलिए चौबीस घंटे में कचरा तो आने वाला है। तो इस घर को अगर झाड़ने में चौबीस घंटे लगें तोझाड़ना बिल्कुल बेकार है। झाड़ना ही नहीं चाहिए, बिल्कुल अर्थ ही नहीं है, क्योंकि जब तक आप झाड़ पाएंगे, तब तक कचरा वापस जगह आ गया होगा। और यह घर कभी भी स्वच्छ हालत में दिखाई नहीं पड़ सकता। तो कैथार्सिस का तो कोई भी प्रयोग इनटेंस होना चाहिए, पहली बात। यानी इसके पहले कि नया कचरा इकट्ठा हो, आपमें खालीपन चाहिए, नहीं तो दिखाई नहीं पड़ेगा। अगर हम बहुत धीमी मात्रा के डोज दें, होएयोपैथी के डोज हों, तो नहीं चलेगा। क्योंकि वह इतने आहिस्ता चलने वाला काम है और आपकी बीमारियां इतनी हैं कि जितना हम निकाल पाएंगे, उससे ज्यादा तो आप कल इकट्ठा करके हाजिर हो जाएंगे। उतने धीमे कैथार्सिस नहीं हो सकती।
दूसरी बात, बहुत तेज भी नहीं की जा सकती। क्योंकि आपकी बीमारियां ही आपका व्यक्तित्व हैं। अगर उनको एकदम से निकाल दिया जाए तो आप एकदम ही घबड़ा सकते हैं। तो ये तीन दिन से कम में भी हो सकता है। मेरे हिसाब में तो यह चौबीस घंटे में भी हो सकता है, आठ घंटे में भी हो सकता है। लेकिन आठ घंटे में इतनी तीव्र प्रतिक्रिया होगी और गैप इतना बड़ा होगा कि आप फिर अपने को पहचान नहीं सकेंगे कि आठ घंटे पहले जो आप थे, वही आप हैं। आपकी जो पर्सनल आइडेंटिटी है, उसके टूट जाने का डर है। तो सफाई इतनी देरी में भी नहीं होनी चाहिए कि कचरा इकट्ठा हो जाए, इतनी तेज भी नहीं होनी चाहिए कि मकान ही साफ हो जाए। इतनी तेज भी हो सकती है। गुल-रोगन लगाकर सफाई की तो फिर गया मामला। फिर आप जब साफ मकान देखने आएंगे तो पाएंगे, मकान साफ, वहां कुछ बचा ही नहीं है। कचरा ही नहीं है, मकान भी गया।
तो हर आदमी की अपनी आइडेंटिटी है। आपका अपना एक व्यक्तित्व है।
बीमार, स्वस्थ, जैसा भी है, आपका अपना व्यक्तित्व है। उस व्यक्तित्व को इतना धीमे भी नहीं साफ करना है कि वह अपने को वापस स्थापित करता चला जाए। इतनी तेजी से भी नहीं साफ कर देना है कि आठ घंटे के बाद पूछें कि मैं कौन हूं। तो हालत खतरनाक हो जाएगी।
तो इधर मैंने जान कर तीन दिन तय किए हैं--बहुत सोच कर, बहुत प्रयोग करके तीन दिन तय किए हैं। जल्दी इनको सात दिन भी करना चाहता हूं। लेकिन तब भी डर लगता है, क्योंकि सात दिन में आप इतनी गहराई में चले जाएंगे कि आप लौटना न चाहेंगे। तीन दिन में मैं आपको इतनी गहराई तक भर ले जाता हूं, जहां से आप कुछ अनुभव भी करें और अपनी पूरी पुरानी व्यवस्था में वापस भी लौट सकें। इस प्रयोग को लंबा किया जा सकता है, इसी इंटेंसिटी पर सात दिन, पंद्रह दिन, इक्कीस दिन। इक्कीस दिन के बाद आप लौटने से इनकार कर देंगे। आपको तो कोई नुकसान नहीं होने वाला है। मेरा कुछ बनता-बिगड़ता नहीं है। लेकिन धर्म ने जो नुकसान सदा से पहुंचाया है संसार को, वह शुरू हो जाएगा। हमारे ख्याल में नहीं है कि धर्म एक बुनियादी नुकसान पहुंचाता रहा है
कि जिन लोगों को भी उसने गहराई दी, वे संन्यासी हो जाएंगे, वे भाग जाएंगे। मैं इस पक्ष में नहीं हूं कि भगोड़ा कोई भी हो। मैं इस पक्ष में हूं कि आपकी जिंदगी में जो हुआ है, वह आप जहां हैं, वहीं घटित हो। और मैं मानता हूं कि उसके ज्यादा परिणाम होंगे, क्योंकि आप आस-पास जुड़े हुए हैं इस जगत से। वह जगत भी आपसे रूपांतरित होगा। और मैं मानता हूं कि जब तक बीमार थे, तब तक पत्नी का साथ दिया और जब स्वस्थ हुए तो भाग गए! तब तो बीमार आदमी ही बेहतर था। मैं तो मानता हूं, यह भी कर्तव्य का हिस्सा हुआ। बल्कि अब यह प्रेम का अनिवार्य हिस्सा होना चाहिए कि जिस दिन मैं शांत हो जाऊं, मेरी पत्नी को तो मुझे शांत करने की चिंता करनी चाहिए। क्योंकि बीमारियां मैंने उस पर

निकालीं, क्रोध उस पर निकाला, घृणा उससे की, लड़ा उससे, प्रेम उसे कभी दिया नहीं। अब दे सकता हूं, अब मैं भाग रहा हूं!
तो मैं किसी को उसकी जीवन-व्यवस्था से तोड़ने के पक्ष में नहीं हूं। इसलिए समय को लंबा भी नहीं कर सकता। और इस समय के लंबे होने से धर्म के प्रति एक भय व्याप्त हो गया। लोग डरते हैं। पति उत्सुक होता, पत्नी डरती है; पत्नी उत्सुक होती है, पति डरता है; बेटा उत्सुक होता है, बाप डरता है। यह बड़े मजे की बात है कि अगर एक बाप के सामने विकल्प हो कि लड़का गुंडा हो जाए कि संन्यासी, तो बाप गुंडा होना पसंद करेगा। क्योंकि कम से कम घर में तो रहेगा। और गुंडे के लौट आने की संभावना है, संन्यासी के लौट आने की कोई संभावना नहीं है। यह बड़े मजे की बात है कि बुद्ध के बाप कोई प्रसन्न नहीं हैं। यानी बुद्ध अगर चोर भी हो गए होते, तो बाप इतने परेशान न होते, जितने बुद्ध के संन्यासी हो जाने से परेशान हुए। स्वाभाविक भी है।
तो मैं तोड़ने के पक्ष में नहीं हूं, इसलिए इस पीरियड को लंबा भी करने में मैं निरंतर विचार करता हूं, लेकिन लंबा करने की कुछ कठिनाई है। इसको इससे छोटा भी नहीं किया जा सकता। तीन दिन मैंने कुछ सोच कर तय किए हैं। मनुष्य के मन के कुछ गहरे में यह है। जैसे कि आप नये मकान में आएं तो आपको तीन दिन तोशायद उसमें नींद ही न आ सके--नये मकान में। और तीन सप्ताह तक तो वह मकान आपको नया लगेगा, तीन सप्ताह के बाद नहीं लगेगा। तीन सप्ताह मन को किसी भी नई चीज के लिए राजी होने में लग जाते हैं। और तीन दिन से राजी होने कोशुरू होता है। और तीन सप्ताह में पूरा हो जाता है।
इसलिए आदमी मरता है तो हम तीसरा दिन मनाते हैं। अब एक नया एडजस्टमेंट है। एक आदमी कम हो गया है, तीन दिन में हम राजी हो पाएंगे। फिर हम तेरहवां दिन मनाते हैं, फिर हम कुछ और राजी हो गए होंगे। फिर हम राजी होते जाएंगे। वह हमने टाइम स्केल कुछ सोच कर ही, बहुत से अनुभवों से तय किए हैं। दिन दो दिन के फर्क हो सकते हैं, लेकिन तीन दिन का मेरा अपना ख्याल ऐसा है कि तीन दिन छोटे से छोटा यूनिट है काम करने के लिए। और यह प्रक्रिया इतनी तेज है कि अगर आप ऑनेस्टली तीन दिन इस पूरी प्रक्रिया को करें तो फर्क होने शुरू हो जाएंगे।
अगर आप खाली हो जाते हैं अपने पुराने बोझ से और पुरानी आदतों की धाराएं टूट जाती हैं, तो फिर आपको ध्यान में गति दी जा सकती है। और इसलिए प्रत्येक प्रयोग के बाद दस मिनट का जो गैप है, वह गति देने का गैप है। तीस मिनट आप कुछ खाली कर रहे हैं, कुछ तोड़ रहे हैं, कुछ ओवरफ्लो होने दे रहे हैं और दस मिनट सिर्फ प्रतीक्षा कर रहे हैं। उस दस मिनट में आप में ध्यान आना शुरू होगा। जिस दिन उस दस मिनट में ध्यान आना शुरू हो जाए, उस दिन वह जो दस मिनट में उतरेगा, वह धीरे-धीरे चौबीस घंटे आपके साथ रहने लगेगा; क्योंकि वह इतना आनंदपूर्ण है।
इसलिए इधर मेरा यह भी अनुभव है कि हमने अशांति का दुख तो जान लिया, शांति का सुख नहीं जाना, इसलिए हमारे पास बहुत विकल्प नहीं है, चुनाव नहीं है। हम निरंतर कहते हैं कि क्रोध बुरा है, लेकिन अक्रोध हमने जाना ही नहीं। तो हम चुनाव कैसे करें? हम निरंतर कहते हैं कि यह सब संसार बेकार है, लेकिन हमने कोई मुक्ति का तो किसी तरह का रस जाना नहीं। हम जिस चीज की निंदा कर रहे हैं उसी को भर जानते हैं और जिसकी हम आकांक्षा कर रहे हैं वह बिल्कुल अपरिचित स्वाद है। और जो अपरिचित स्वाद है वह चुना नहीं जा सकता, उसका स्वाद मिलना चाहिए। एक दफे भी मिल जाए...
अब एक आदमी ने अंधेरा ही अंधेरा जाना है। अब वह बहुत दफे कहता है, अंधेरा छोड़ना चाहता हूं, प्रकाश पाना चाहता हूं। लेकिन जब वह यह बोलता है कि मैं अंधेरा छोड़ना चाहता हूं और प्रकाश पाना चाहता हूं, तो अंधेरा छोड़ना चाहता हूं, यह कहते वक्त तो उसका अनुभव होता है और जब कहता है प्रकाश पाना चाहता हूं, तब सब धुंधला हो जाता है। तब इतना ही होता है, अंधेरा नहीं होता है, लेकिन प्रकाश की कोई रेखा नहीं बनती। और मैं मानता हूं कि अब यह नहीं छोड़ सकता है। क्योंकि हम छोड़ तभी सकते हैं, जब उससे विपरीत हमें मिलना शुरू हो जाए, अन्यथा छोड़ना मुश्किल है। क्योंकि हम यह भी खो दें, जो है, और वह भी न मिले, जो नहीं है, जो हमें पता ही नहीं है, तो आदमी इतनी हिएमत नहीं

जुटा पाता। कभी कोई लाख, दो लाख में एक आदमी जुटाता है। उसको हम अपवाद माने हुए हैं, वह नियम के बाहर है। उसके लिए कोई व्यवस्था की जरूरत नहीं पड़ती। और वैसा आदमी कई दफे भूल भरी बातें दूसरों से कहता है। वह कहता है, तुएहें भी व्यवस्था की कोई जरूरत नहीं है। वह यह ठीक कहता है, बाकी वह बेमानी है बात।
यह साधारण जन जो है हमारा, जो औसत आदमी है, यह कुछ पा ले तो कुछ छोड़ने
को राजी हो सकता है। तो इधर मैं इसको तीस मिनट में खाली करवाता हूं और दस मिनट में मौका देता हूं कि वह जगह खाली हो गई, उसमें कुछ भर आए। जैसे प्रकृति वैक्यूम को बरदाश्त नहीं करती, वैसा चित्त भी नहीं करता। अगर आप गलत से खाली हों तो ठीक भरना शुरू हो जाता है। एक दफे खाली होना जरूरी है। तो इसलिए दो हिस्से हैं उसमें--एक तो कैथार्सिस का है, जो खाली होने का है; और दूसरा हिस्सा ध्यान का है, जो कुछ किसी चीज के उतरने का है, किसी चीज के भरने का है। उसमें आपको कुछ भी करना नहीं है। यह अनुभव अगर आपको धीरे- धीरे दस मिनट में उतरने लगे, तो यह अनुभव आपके साथ चौबीस घंटे रहने लगेगा और यह अनुभव आपको नई बीमारियां इकट्ठी करने से रोकेगा, नये दमन करने से रोकेगा, नई गलतियां करने से रोकेगा, फिर से पुराने रास्तों पर नया-नया जाने से रोकेगा। यह अनुभव है, यानी अब आपको निर्णय लेना पड़ेगा कि मैं क्रोध न करूंगा। अब आप जानते हैं, अक्रोध का आनंद। अब आप क्रोध नहीं करेंगे।
और यह जो कैथार्सिस का प्रयोग है, वह तीन महीने का है। अगर कोई ठीक से करेगा तो ज्यादा से ज्यादा तीन महीना चलेगा, फिर धीरे-धीरे शिथिल होता जाएगा। तीन सप्ताह में भी शिथिल होने लगेगा। फिर धीरे-धीरे वह खत्म हो जाएगा। आप नाचना चाहेंगे तो न नाच सकेंगे तीन महीने के बाद, चिल्लाना चाहेंगे तो न चिल्ला सकेंगे, रोना चाहेंगे तो न रो सकेंगे। क्योंकि वह होना चाहिए न भीतर! आप एकदम खाली और रिक्त हो गए होंगे। रोना निकलेगा ही नहीं, तो आप रोएंगे कैसे? हंसना निकलेगा नहीं, आप हंसेंगे कैसे? तो वह जो कैथार्सिस है, वह एक अर्थ में मापदंड का काम करेगी, वह रोज-रोज कम होती चली जाएगी। जितनी तीव्रता से करेंगे, उतनी शीघ्रता से कम होती चली जाएगी। अगर उसको रोका तो उतना वक्त लेगी लंबा। और लंबा वक्त खतरनाक है, क्योंकि इस बीच आप और इकट्ठा कर लेंगे। इसलिए तीन दिन में इनटेंसिवली, मैं इसको और लगाने को कहता हूं कि तीन बैठक में आप इसको पूरे वक्त निकाल लें। यह निकल जाए तो यह अनिवार्य हिस्सा नहीं है, यह तो खत्म हो जाएगा अपने आप। यह तो सब बीमारी को फेंक देना है बाहर। फिर आप नई बीमारी इकट्ठी नहीं करेंगे। और इसके लिए कोई जरूरत न रह जाएगी। एक दूसरा हिस्सा इसके पीछे आना शुरू होगा। अभी कैथार्सिस ध्यान के पहले है। तीस मिनट की कैथार्सिस है, दस मिनट का ध्यान है। जैसे-जैसे कैथार्सिस खत्म होगी, वैसे-वैसे दस मिनट के बाद कुछ होना शुरू हो सकता है।
फिर नाचना आ सकता है, लेकिन वह नाचना बहुत और होगा। अभी यह नाचना कैथार्सिस है। अभी यह नाचने में कुछ निकल रहा है। उस नाचने में कुछ हां-ना हो रहा है। फिर गीत निकल सकता है, फिर खंजड़ी बज सकती है, फिर कोई नाच कर गा सकता है सड़क पर। लेकिन वह और बात है। फिर वह कैथार्सिस नहीं है। फिर जो आपको मिल गया है, उसके आनंद का अतिरेक है, वह हर्षोन्माद है, वह इक्सटैसी है, वह पीछे आएगा। यह पहला हिस्सा जब खत्म होगा, तब दूसरा हिस्सा शुरू होगा। वह इसके पीछे की बात है। इसलिए उसकी साधारणतः बात नहीं करता, क्योंकि अभी वह मिड-स्टेप हो सकता है। अभी हमारे ख्याल में पड़ना मुश्किल हो जाए कि क्या क्या है। इसलिए यह निकल जाए एकबारगी तो वह अपने से धीरे- धीरे उसकी धारा टूटेगी। अभी इसके करने से हलकापन लगेगा, फिर उसके करने से बहुत हलका हो जाएगा।
वह क्रिएटिव एक्ट है। रोग के बाहर हो गए हैं आप, अब एक स्वास्थ्य ऊपर आएगा। अब उस स्वास्थ्य की अपनी धाराएं होंगी बहने की। इतना ही काफी नहीं है कि आपमें से क्रोध न बहे, किसी दिन अक्रोध भी बहना चाहिए। इतना काफी नहीं है कि आपसे घृणा न निकले, किसी दिन प्रेम भी निकलना चाहिए। घृणा न

निकले, यह जरूरी है, पर्याप्त नहीं। प्रेम निकले, तभी आप पर्याप्त पर पहुंच गए हैं। वह दूसरे हिस्से में घटना घटनी शुरू होगी।
और इसलिए मैं समूह पर जोर देता हूं। असल में अकेले में जाने का डर भी वही है, समूह का डर भी है। वही सहयोग भी है, वही हमारा डर भी है।
बहुत लोग आते हैं, वे मुझसे कहेंगे, अकेले में हम कर लें तो क्या हर्ज है?
कोई हर्ज नहीं है। तुम अकेले में करना चाह रहे हो। तो तुम जिस वजह से अकेले में करना चाह रहे हो, वही वजह तो रुकावट भी है। तुम डरते हो, कोई देख न ले। जीओगे अकेले में फिर? ध्यान तो अकेले में कर लोगे। जीना तो पड़ेगा समूह में।
वह जो संन्यासी बहकता था, उसका कारण था। ध्यान किया उसने अकेले में और जीना तो पड़ता है समूह में। जिसको अकेले में ध्यान करना थिर हो जाएगा वह समूह से भागने लगेगा। जिंदगी तो समूह में है, जीएंगे हम कैसे अकेले में? जीएंगे तो सबके साथ और ध्यान करेंगे अकेले में। नहीं, इनका तालमेल नहीं होता। जब जीवन ही सब के साथ है तो ध्यान भी सब के साथ हो, तो उसमें सहजता होगी। और जो मैं कुछ हूं, अच्छा हो कि लोग जान लें। अगर मेरी पत्नी मुझे देख लेती है ध्यान के पहले चिल्लाते और गालियां बकते और घूंसे तानते, तो कल अगर मैं गुस्से में भर कर घूंसा भी तानूं तो हो सकता है वह हंस पाए। क्योंकि अब जरूरी नहीं है मानना कि मैं उसके ऊपर घूंसा तान रहा हूं। अब यह अनिवार्य नहीं रहा, क्योंकि इसने हवा में घूंसे तानते हुए मुझे देखा है। अगर मैं अपनी पत्नी को रोते-चीखते ध्यान में देखता हूं, कल वह अचानक छोटी सी बात पर रोने-चीखने लगे, तो मुझे यह मानने की जरूरत नहीं है कि वह मुझ पर डायरेक्टेड है, मैं सिर्फ बहाना ही हूं। अब मैं जानता हूं, यह तो बिना इसके हो सकता है। इसलिए समूह में मेरा जोर है।
फिर दूसरी बात यह है कि दुनिया इतना विराट प्रश्न है आज कि इस एक आदमी
को बदल कर हम ऐसा ही कर रहे हैं जैसे चएमच भर रंग से समुद्र का पानी रंग रहे हों। उससे कुछ होने वाला नहीं है। रंगने वाला थकेगा, चएमच टूट जाएंगे, पानी जैसा है, वैसा ही रहेगा। अब तो मास स्केल पर चूंकि बीमारी है, विराट उसका रूप है, विराट ही संघर्ष करना होगा। इससे काम नहीं चलेगा कि गांव में एक आदमी ध्यान कर ले मंदिर में बैठ कर। पूरे गांव को डुबाना पड़ेगा।
इधर मेरी योजना है कि एक-दो-तीन वर्ष में हजार, दो हजार युवक-युवतियों
का संन्यास हो, जो पीरियाडिकल हो। उसमें मेरी दृष्टि है कि जिसको जब लौटना हो उस वक्त लौट जाए। यह संन्यास तो आजीवन नहीं है, आजीवन हो तो प्रोफेशन हो जाता है। यह मौज है। आपको छह महीने की छुट्टी मिली, आप छह महीने के लिए मौज से संन्यासी हो जाएं। फिर घर लौट जाएं, फिर घर में रहें। तो धीरे-धीरे हजारों लोग संन्यासी होकर घर में पहुंच जाएंगे। ये एक-एक घर को बदलने वाले सिद्ध होंगे। और ये कभी भी महीने, दो महीने के लिए वापस संन्यासी हो सकते हैं।
यानी संन्यास को मैं--कोई जिंदगी से अलग चीज नहीं है, बल्कि जिंदगी का फैला हुआ हाथ है--वह शक्ल देना चाहता हूं। तो ये हजार, दो हजार लोग सदा ही संन्यासी रहेंगे। इसमें लोग बदलते रहेंगे, मगर ये दो हजार बने रहेंगे। इन दो हजार को लेकर मेरा ठीक, जिसको कहना चाहिए कि एक मॉरल अटैक, एक गांव पर कर देने का है। दो हजार आदमी पूरे गांव पर सात दिन के लिए ठहर जाएं। पूरे गांव को हम सात दिन ध्यान में डुबाने की कोशिश करें। इससे कम पैमाने पर काम नहीं होगा। और यह टेक्नीक ऐसा है कि इसमें सत्तर प्रतिशत व्यक्तियों के प्रवेश की संभावना है। हंड्रेड प्रतिशत हो सकती है, पर वे तीस प्रतिशत कमजोर पड़ जाते हैं, नहीं जा पाते हैं, नहीं कोआपरेट कर पाते हैं, हजार तरह की बातें सोच कर उठ जाते हैं। लेकिन सत्तर प्रतिशत तो अनिवार्य रूप से इसमें प्रवेश हो जाते हैं। अगर हम एक गांव को, दस हजार का गांव हो और उसमें सौ लोगों को भी हम ध्यान में प्रवेश करवा सकें, तो हम उस गांव की जिंदगी बदलने में समर्थ हो जाएंगे। क्योंकि अभी भी किसी गांव में हजार गुंडे नहीं हैं। यानी अभी भी बुराई जो है, कोई इतनी बड़ी नहीं हो गई है। लेकिन कठिनाई सिर्फ यह है कि बुराई के समूह हैं और भलाई के समूह नहीं हैं।

तो इस कारण से जितना बड़ा हो सके और जितना व्यापक हम कर सकें, और जितने
कम समय में हो सके--क्योंकि एक गांव को अगर हम चार महीने करवाने में लग जाएं तो हम पूरे गांव को नहीं डुबा सकते। तो इसलिए टेक्नीक को रोज गतिमान करते जाना है। अब आपने ख्याल किया होगा, सुबह का जो टेक्नीक है, उससे रात का टेक्नीक और तीव्र है। हम पूरे गांव को रात इकट्ठा कर सकते हैं, जब कोई काम पर नहीं है, सब फुर्सत में होते हैं। पूरे गांव को इकट्ठा कर सकते हैं। पूरे गांव को डुबा सकते हैं। सुबह को उनको कुछ करना भी है, श्वास भी लेनी है कुछ और भी करना है, रात को वह भी करना नहीं है।
कोई एक सौ आठ विधियां हैं ध्यान की। और उनमें से प्रत्येक विधि को स्टडी किया जा सकता है। उसमें थोड़ा सा जोड़ करना पड़े।
अब जैसे इसमें मैं पहले दस मिनट श्वास के लिए जोड़ता हूं। श्वास का ख्याल सदा से है। लेकिन सदा से ख्याल था रिदमिक ब्रीदिंग का। रिदमिक ब्रीदिंग से अगर यह प्रयोग किया जाए तो वर्षों लगेंगे। मेरा जो प्रयोग है, वह नॉन-रिदमिक ब्रीदिंग का है। उसमें रिदम को नहीं लाना है। क्योंकि रिदम के साथ आप एडजस्ट हो जाएंगे। नॉन-रिदम में प्रश्न है ताकि आप न एडजस्ट हो पाएं। खलबली तत्काल मिट जाए, उसको प्रतीक्षा न करनी पड़े।
तो इसलिए वह दस मिनट के लिए मैं, बस सिर्फ लोहार की धौंकनी की तरह छोड़ कर, जिसमें कोई व्यवस्था नहीं है, ताकि दस मिनट में आप केआटिक हो जाएं। और आप केआटिक हो जाएं, अराजक हो जाएं, तो फिर हम दूसरे चरण में कैथार्सिस कर सकते हैं, नहीं तो नहीं कर सकते हैं।
मजा यह है कि भस्त्रिका कभी रही, लेकिन उसके दूसरे प्रयोग हैं, उसका कभी भी ध्यान के लिए प्रयोग नहीं है। उसके प्रयोग दूसरे हैं। प्राणायाम के जो प्रयोग थे, वे सब लयबद्धता के प्रयोग थे, इसलिए उनकी चोट तीव्र नहीं हो सकती थी। अगर तीव्र चोट करनी है तो बिल्कुल अराजक होना चाहिए। उसकी अराजकता ही उसकी स्पीड है।
अब दूसरा जो चरण है, यह दूसरा चरण रोकने के उपाय किए हैं योग ने। इसलिए आसन की व्यवस्था की है। आसन की जो व्यवस्था है वह कैथार्सिस को मद्धिम गति से करने की व्यवस्था है। तोशरीर पर प्रकट न हो, भीतर से निकले। तोशरीर को पहले आसनों का वर्षों तक अभ्यास कराया जाएगा। जैसे सिद्धासन है या पद्मासन है, ये इस बात के अभ्यास हैं कि भीतर चित्त में कुछ भी हो, शरीर थिर रहे। भीतर बहुत कुछ होगा, कैथार्सिस भीतर से भी हो जाएगी। यानी मैं आपको घूंसा मारूं, घूंसा उठा कर, यह जरूरी नहीं है। हाथ बिना उठाए भी घूंसा मारा जा सकता है।
तो योग ने यह व्यवस्था की थी कि पूरा पहले आसन सिखाएंगे वर्षों तक, ताकि आपके शरीर पर प्रकट न हों, नहीं तो लोग पागल कहेंगे। लेकिन तब पहले वर्षों आसन सिखाया। न तो कोई वर्षों आसन सीखने को आज तैयार है। न ही मैं मानता हूं कि इतना समय खराब करने की जरूरत है। फिर यह भय क्या कि बाहर निकल जाएगा! इस भय को तोड़ दें। हम कहेंगे कि निकलना उचित है यह। और भय टूट गया, और तो कुछ मामला नहीं है यह। हम डरते हैं कि ऐसा न हो जाए कि मैं भला आदमी और अचानक चिल्लाने लगूं, रोने लगूं। हमारी मान्यता है। अब यह प्रयोग जहां- जहां हुआ है, एक-दो दफे, तीन दफे प्रयोग होता है, गांव भर को पता चल जाता है। कोई ऐसी बात नहीं है। उसके लिए वर्षों खराब करवाने के मैं पक्ष में नहीं हूं। तो मैं तो उलटे प्रयोग के पक्ष में हूं कि जोशरीर करना चाहे उसको और सहयोग देकर पूर्णता से करो, ताकि छह महीने में निकलता हो, वह तीन दिन में निकल जाए।
और एक मजे की बात है कि योग में कभी-कभी ऐसी घटनाएं घटती हैं। वे किन्हीं गुफाओं में, किन्हीं पहाड़ियों पर इनको ले जाएंगे और वहां इनके लिए उपाय बनाएंगे, नहीं तो होने वाला नहीं है। अब क्यों ऐसा होने दें? जिंदगी में ही इसको स्वीकार कर लो।
दूसरी मजे की बात है कि यह प्रक्रिया अपने आप घटती है। अगर न बताया जाए तो घबड़ाने वाली है। और जब घटती है तो आदमी रोकने की कोशिश करता है। रोक लें तो रुक जाएगी। लेकिन वह जो रुक जाना है, वह उसकी कैथार्सिस न होने देगा। तो इधर मैं इसको पूरी की पूरी गति देना चाहता हूं और इसके लिए पूरी

स्वीकृति देना चाहता हूं। और ऐसे ग्रुप गांव-गांव में पैदा करना चाहता हूं, जिनके भीतर यह एक स्वीकृति है। यह स्वीकृत है। यह स्वीकृत होने से निकलने में इसको बड़ी आसानी होगी। इसका प्रवाह चाहे जो करे।
तो इसलिए वे जो लोग कहते हैं कि अकेले में क्यों न ध्यान कर लें--अक्सर
तो वे लोग हैं, उनसे पूछिए कि आपने किया? अकेले में कौन रोकता था आपको करने को? अकेले तो आप हैं ही, आपको कौन रोका है कब करने से? आपने किया?
आदमी का मन बहुत ही चालाक है। जब उसे एक विधि करने को कहो तो वह कहेगा, अगर वैसा कर लें तो कोई हर्ज है? और वैसा उसने कभी किया नहीं! और वह सिर्फ बहाना मिल गया था कि वह न करे। और कौन उससे कहने कब गया था? वह कहेगा, वैसा कर लें? आप अगर वैसा करने को कहेंगे तो वह कहेगा कि वैसा करना है! और कोई रास्ता नहीं है।
असल में न करने से बचने की बड़ी इच्छाएं हैं। मेरे पास लोग आते हैं। जब मैं उनसे कहता था कि तुएहें यह करना पड़ेगा, तब वे कहते थे, आप कुछ कर दें, हमसे क्या हो सकता है! हमसे हो सकता होता तो हम कर लेते। आप कुछ कर दें। मैं कहता था, नहीं, तुएहें ही करना पड़ेगा। और वे कहते हैं, बड़ी कृपा होगी। परमात्मा ही करे तो हो जाए, हमसे नहीं हो सकता। अब जब मैं उनसे करवा रहा हूं तो वे मेरे पास आते हैं कि अगर हम अकेले में करें, हम ही कर लें--तो आपकी क्या जरूरत है! तब मुझे बड़ी हैरानी होती है। बड़ी हैरानी होती है कि यह वही आदमी है! नहीं करना है तो जानो कि नहीं करना है, क्योंकि कौन तुमसे कहने जा रहा है? लेकिन नहीं, यह भी नहीं जानना है। हम तरकीबें निकाल कर देंगे। और जोखिम तो इतनी बड़ी है भीतर प्रवेश की कि हमें छोटी-मोटी जोखिम करवा कर परीक्षा लेनी ही चाहिए, ले लेनी ही चाहिए, नहीं तो बड़ी जोखिम कैसे उठाएगा। यहां तो पर्तें टूटेंगी बहुत तरह की, बहुत घटनाएं घटेंगी। अगर वह रोने- चिल्लाने से डर गया है तो मैं मानता हूं कि उसका भीतर न जाना ही अच्छा है, क्योंकि भीतर तो और बहुत कुछ घटेगा। बहुत मवाद है, वह टूटेगी, फूटेगी, बहेगी। भीतर तो बहुत सा कोढ़ है, वह सब दिखाई पड़ेगा। वह उसे तो कैसे जान पाएगा! इसलिए अगर वह इससे डर गया है तो ठीक ही है।
तो मैं मानता हूं कि जिसने इतनी हिएमत की, वह थोड़ा हिएमतवर है। और थोड़ी हिएमत करेगा, कदम-कदम भीतर ले जाया जा सकता है। और मैं क्या करता हूं? कोई भी क्या करेगा? कर तो आप ही रहे हैं। ज्यादा से ज्यादा यह सिचुएशन पैदा की जा सके। और आप बिना सिचुएशन के नहीं कर सकेंगे, यह साफ है। अन्यथा कौन रोकता है? आप मजे से करें। जिसको भी करना है, वह मजे से करे। उसे कौन रोकने कब गया है? लेकिन मैं इधर इसलिए सिचुएशन पैदा करना चाहता हूं... लेकिन हमारा मन है। हमारा मन ऐसा है कि कहीं कुछ होने लगे, तो भी डर लगता है कि कहीं हो ही न जाए।

एक महिला इधर आई थी अभी एक कैंप में। तो पहले दिन उसने प्रयोग किया और बहुत अच्छा परिणाम हुआ। पहले भी तीन कैंपों में वह आई है। तो मुझे आकर पैर पकड़ कर रोकर उसने कहा कि आपने पहले ही क्यों न करवाया? हमारा इतना समय बेकार गया। बड़े आनंद, बड़े भाव से उसने कहा, पहले आपने क्यों नहीं प्रयोग करवाया? और तीसरे दिन वह भाग गई बीच में से और दोपहर मुझसे कह गई कि मैं घबड़ा गई। वह तो आपका पहले ही वाला प्रयोग अच्छा था, इसमें तो तमाम रोना, चिल्लाना और चीखना--मैं तो पागल हो गई हूं।
यही महिला अभी एक दो दिन पहले मुझसे कहती है कि आपने यह पहले क्यों न करवाया। और तीसरे दिन कहती है कि नहीं, वह ठीक था, शांत होकर बैठने वाला प्रयोग बहुत अच्छा था। और भाग गई बीच से। अब यह क्या करे? आदमी का मन बहुत अजीब है। वह बचाव खोज रहा है। नहीं होगा तो वह आकर कहेगा कि हो नहीं रहा है। होगा तोवह आकर कहेगा कि कहीं हो तो नहीं जाएगा! दोनों बातें कहेगा! और बहुत कभी-कभी हंसने जैसा मालूम होता है। हैरान करने वाले लोग हैं।

प्रश्नः मेरे सामने एक दूसरा सवाल आया। कई विचारक लोग भी थे, कई लोग
भी थे--आपकी जो प्रवृत्ति है, उनके प्रति थोड़ा सदभाव भी था--इनके पास धारणाएं हैं कि इंसान दोढंग से काम करता है, सब्जेक्टिव और आब्जेक्टिव।

तो आपकी जो प्रवृत्तियां हैं और चाहते हैं और आपके पास इतना समय भी नहीं है और हमारे पास भी इतना समय नहीं है। हम बड़ी आसानी से और बड़े पैमाने पर काम करना चाहते हैं। अगर वैसा ही कुछ करना है तो आपकी जोशक्तियां हैं और भावनाएं हैं वे कंस्ट्रक्टिव ढंग से चैनेलाइज हो जाएं, तब बड़ी आसानी से काम चल सकता है। लेकिन कभी आपकी बातों में इतना औरों के प्रति कुछ खंडनात्मक रुख होता है--गांधी या महावीर कोई भी आपसे छूटता नहीं है--कितने लोगों को लगता है और मुझे भी लगता है। तो इससे यह होता है कि जो लोग सदभाव की दृष्टि से देखते हैं, उनके दिमाग में भी तो एक हलचल मचती है। तो क्या यह अच्छा नहीं होगा कि आप कंस्ट्रक्टिव दृष्टि से आपको जो कुछ कहना हो वह कहें--औरों ने क्या किया और क्या कहा, वह बात छोड़ कर कहें तो क्या आसान नहीं होगा?

नहीं, इसलिए कि मर ही जाएगा; आसान तो नहीं होगा, काम भी मर जाएगा। क्योंकि यह दलील नई नहीं है। महावीर के पास भी लोगों ने आकर यही कहा कि आप कृपा करके अगर उपनिषदों और वेदों के खिलाफ न बोलें तो लोगों का सदभाव रहेगा। बुद्ध के पास भी लोगों ने आकर यही कहा कि आप अगर महावीर के खिलाफ न बोलें तो लोगों का सदभाव रहेगा। और शंकर को भी लोगों ने यही आकर कहा कि अगर आप बुद्ध के खिलाफ न बोलें तो आसानी पड़ेगी, जिनका बुद्ध के प्रति सदभाव है, वे कभी आपको साथ न देंगे। जीसस को भी यही कहने वाले लोग थे। तो थोड़ा सोचने जैसा मामला है कि ये सारे के सारे लोगों को यह समझ में बात नहीं आई! समझाने वाले लोग थे, आज हम उनका नाम भी नहीं बता सकते। कारण क्या है? न किसी को ख्याल में आता, न शंकर को ख्याल में आता, न जीसस को और न महावीर को। मुझे भी ख्याल में नहीं आता। उसका कारण क्या है?
पहली तो बात यह है कि हम जिसको व्यक्ति के भीतर आमूल परिवर्तन की व्यवस्था देखते हैं, वे मूलतः डिस्ट्रक्टिव होते हैं। वे मूलतः डिस्ट्रक्टिव होते हैं, जो सृजनात्मकता आती है, वह पीछे आया हुआ फल है। उसके प्रारंभिक चरण तो सब विनाश के हैं। आप जो हैं, अगर मैं कंस्ट्रक्टिव कुछ बात करूं तो इसमें भी एक जोड़ होगा, आप जो हैं और इसलिए आपको आसान पड़ेगा। सदभाव बनाना भी आसान होगा, क्योंकि आपको मैं अंगीकार करता हूं, जैसे आप हैं। ज्यादा से ज्यादा मैं यह कहता हूं कि कमीज के ऊपर आप बंडी और पहनें, इससे आप और सुंदर हो जाएंगे। इसके लिए आप राजी हो जाते हैं, क्योंकि आपको बदलने को तो मैं कुछ कहता नहीं, कुछ छोड़ने को कहता नहीं, कुछ तोड़ने को कहता नहीं, आपको मैं पूरा स्वीकार करता हूं और कुछ एडीशन करता हूं आपमें। इसको आप कंस्ट्रक्शन कहते हैं!
साधारणतः इसको हम कंस्ट्रक्शन कहते हैं कि आप जैसे हैं, उसको हम स्वीकार कर लें। निश्चित ही मुझे काम में सुविधा होगी, मैं आपको बंडी पहना दूं अगर। लेकिन आपको बंडी पहनाने से मुझे प्रयोजन ही नहीं है। मैं आपको बदलना चाहता हूं। आपको सुधारना, संवारना नहीं चाहता। आप सुधरे-संवरे होकर भी यही रहेंगे, जो आप हैं। हो सकता है और खतरनाक हो जाएं, क्योंकि अभी शायद कभी-कभी आपको अपना शरीर भी दिखाई पड़ जाता हो, बंडी पहनकर वह भी दिखाई न पड़े, कोट पहन कर और भी दिखाई पड़ना बंद हो जाएगा।
तो मौलिक रूप से तो मैं आपको मिटाना चाहता हूं और उस मिटाने में बड़ी लंबी यात्रा है। और अभी तो आपके विचार पर चोट करूंगा, कल आपके भाव पर चोट करूंगा, परसों आपके पूरे अस्तित्व पर चोट करूंगा। तो अगर विचार से ही भाग खड़े हुए तो मैं समझता हूं, अपना कोई संबंध नहीं है, क्योंकि और गहरी चोट कैसे आप सहेंगे?
गांधी आपके लिए विचार से ज्यादा नहीं हैं, वे आपकी विचारधारा हैं। मोहएमद आपकी विचारधारा हैं या महावीर आपकी विचारधारा हैं। अगर विचार का इतना मोह है--सिर्फ विचार का, तो आप अपने अस्तित्व को बदलने वाले आदमी नहीं हैं।
तो मेरे लिए तो उपयोगी है वह कि मैं देख लेता हूं कि आदमी बदलने वाला आदमी है कि सिर्फ जोड़ने वाला आदमी है। तो मैं तो आपके विचार पर चोट करके, आपकी बिल्कुल परिधि पर चोट कर रहा हूं। अगर वहीं से आप भाग खड़े होते हैं और

मेरा आपसे संबंध टूट जाता है, तो मैं समझता हूं कि अच्छा हुआ इस झंझट में नहीं पड़ा, क्योंकि यह काम होने वाला नहीं था आपसे। चोट तो मुझे और गहरी करनी पड़ेगी। आपके भाव पर भी चोट करूंगा, कल आपके अस्तित्व पर भी चोट करूंगा। जिनको भी इतनी गहरी चोट करनी है, जो भी ट्रांसफार्मेशन के लिए उत्सुक हैं, वे कंस्ट्रक्टिव नहीं हो सकते हैं। और जो कंस्ट्रक्टिव हैं, उनसे कभी ट्रांसफार्मेशन किसी का हुआ नहीं है। वह चाहे गांधी हों, चाहे विनोबा--इन दोनों को मैं कंस्ट्रक्टिव आदमी नहीं कहता हूं। इनसे किसी का कोई ट्रांसफार्मेशन नहीं हुआ।
तो अगर मुझे भी नेतृत्व भर करना हो, तो वह जो मित्र सलाह देते हैं, उचित सलाह देते हैं। अगर मुझको भी एक महात्मा बनकर बैठ जाना हो, तो वह बहुत सरल मामला है। उससे ज्यादा सरल कोई काम नहीं है। तब मैं आप जैसे हैं, उसको स्वीकार करता हूं, और सजा देता हूं थोड़ा। आपके अहंकार को और फुसलाता हूं, और सजा देता हूं, तो आपको परसुएड कर देता हूं। लेकिन तब बस मैं नेता होता, और कुछ नहीं होता, मैं महात्मा होता। इससे ज्यादा आप पर मैं कुछ नहीं कर पाता। क्योंकि आपको तो मैं पहले ही स्वीकार करके चल पड़ा कि आपके साथ तो करने का कुछ उपाय नहीं है।
तो मेरे जैसे व्यक्तियों को तो अनिवार्य रूप से इस उपद्रव से गुजरना पड़ता है। वह उपद्रव नया नहीं है, वह पुराना है। और मजा यह है कि महावीर ने जिन लोगों के खिलाफ कहा, महावीर जैसे आदमी को फिर महावीर के खिलाफ बोलना पड़ा, क्योंकि तब तक महावीर का भी अनुगामी वहीं खड़ा हो गया होता है, जहां उपनिषद का अनुगामी महावीर के वक्त खड़ा था। यह झगड़ा महावीर से नहीं है। महावीर का जोझगड़ा था, वही यह झगड़ा है। दिखता है कि महावीर से है, क्योंकि महावीर को उपनिषद के अनुयायी के साथ लड़ना पड़ा था, क्योंकि उपनिषद स्टेटस-को हो गया था। अब मुझे महावीर से लड़ना पड़े, क्योंकि महावीर स्टेटस-को हैं। इसमें महावीर की भी सहानुभूति मेरे ही साथ होगी तब, होगी ही, क्योंकि मैं काम वही कर रहा हूं। और ऐसा नहीं कि यह काम कोई खत्म हो जाने वाला है। कल मेरे जैसे को मुझसे लड़ना पड़ेगा, इसमें कोई उपाय नहीं है--यानी कल मेरे जैसे व्यक्ति को मुझसे इसी भांति लड़ना पड़ेगा। पर मेरी उसके साथ सहानुभूति होगी। किसी न किसी को लड़ना ही पड़ेगा, लड़ना ही चाहिए। क्योंकि तब तक मैं सेटल्ड हो जाऊंगा, कुछ लोगों के मन में बैठ जाऊंगा। जिनके मन में मैं बैठ जाऊंगा, उनको अनसेटल्ड करना पड़ेगा।
तो मेरी दृष्टि में, वह जो मित्र कहते हैं, बड़ी गणित की, चालाकी की, होशियारी की बात कहते हैं। ठीक कहते हैं। नेतृत्व के लिए वही जरूरी है। लेकिन मुझे उसमें उत्सुकता ही नहीं है। मुझे उत्सुकता आपमें है। और आपके लिए कुछ हो सके तो उसमें उत्सुकता है। और उसके लिए वह जो सर्जरी है, वह बहुत जरूरी चीज है। और विचार उसमें सबसे कमजोर हिस्सा है, जिस पर पहले चोट की जानी चाहिए। अगर उस पर ही चोट करने से आप तिलमिला जाते हैं तो फिर भीतर तो और चोटें करनी बहुत मुश्किल हैं, क्योंकि और गहरा अहंकार भीतर है, वह और गहरा होता चला जाता है। इधर मेरे लिए तो परीक्षा का उपाय बन गया है। यानी मैं तो मानता हूं कि मेरे खंडन वगैरह को सुन कर भी कोई मेरे पास आ रहा है, तो मैं सोचता हूं कि उस आदमी के साथ कुछ मेहनत की जा सकती है। मैं उसको कहता नहीं कि वह मुझे माने, मेरे खंडन को माने, इसको भी नहीं कहता। लेकिन फिर भी मेरे पास आ रहा है, और मेरे डिस्ट्रक्टिव ढंग से भाग ही नहीं गया है, तो मैं समझता हूं कि यह आदमी डिस्ट्रक्शन के लिए तैयार हो सकता है। इसके भीतर कुछ तोड़ा जा सकता है। यह आदमी थोड़ी देर टिक सकता है। अन्यथा हम सबकी मान्यताएं ऐसी हैं।
एक बड़ी कठिनाई है, बड़े मजे से मान्यताएं बनाए हुए हैं। और एक आदमी पर मान्यता नहीं है कोई। कोई गांधी का भक्त है, कोई मार्क्स का भक्त है। बंगाल में कोई मार्क्स का भक्त है, कोई गांधी का दुश्मन है। कोई महावीर का भक्त है, कोई मोहएमद का। लेकिन इन सबका माइंड एक है। मेरी लड़ाई उस माइंड से है। वह इनको थोड़े दिन में समझ में आने लगेगा। क्योंकि जब मैं गांधी से लड़ता हूं तो मार्क्सिस्ट मेरे पास आ जाता है, वह कहता है, आप बिल्कुल सच बात कहते हैं। साल भर बाद वह एकदम भाग खड़ा होता है, जब मैं मार्क्स के

खिलाफ बोलता हूं तब वह भाग जाता है। क्योंकि तब वह आदमी कुछ गड़बड़ हो गया है, पहले ठीक था।
तो पांच-दस वर्ष लगेंगे कि लोग समझेंगे कि मुझे न मार्क्स से लेना है,
न गांधी से। इररिलेवेंट हैं ये। आपके माइंड से मुझे लड़ना है। तो गांधी के भक्त से लड़ना है तो मैं गांधी के खिलाफ बोलूंगा, मार्क्स के भक्त से लड़ना है तो मार्क्स के खिलाफ बोलूंगा। और कई बार इन दोनों में बड़ा कंट्राडिक्शन दिखाई पड़ेगा। दिखाई पड़ेगा ही। क्योंकि मार्क्स के खिलाफ लड़ना है तो और ढंग से लड़ना पड़ेगा। इन दोनों बातों में कहीं भी इनकंसिस्टेंसी दिखाई पड़ेगी। क्योंकि अगर मुझे गांधी के खिलाफ लड़ना हो तो मैं कंसिस्टेंट हो सकता हूं। मुझे तो एक तरह के माइंड से लड़ना है। वह माइंड जोमार्क्स को पकड़ लेता है, गांधी को पकड़ लेता है, बुद्ध को पकड़ लेता है, उस माइंड से लड़ना है। उस माइंड से लड़ने के लिए मुझे नाहक इन बेचारों से भी लड़ना पड़ रहा है। इनसे मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। लेकिन यह लड़ाई करनी पड़ेगी।
और अगर सिर्फ महात्मा बनकर रह जाना हो, तो बहुत सरल है। उससे ज्यादा सरल काम तो है ही नहीं। और हमारी समझ में उससे ज्यादा सरल काम तो है ही नहीं। इसलिए इधर जो यह सलाह मित्र देते हैं, इन्हीं मित्रों की सलाह, इसी तरह के सोचने वाले लोग हजारों हैं, उनसे कुछ हो ही नहीं पाता।

प्रश्नः विचारों के साथ अगर झगड़ना ही है तो व्यक्ति निरपेक्ष विचारों
के साथ झगड़ा करे, तो अच्छा नहीं होगा? क्योंकि कभी-कभी होता है कि इंसान को कभी हमारे अनजानपन से अन्याय हो भी सकता है।

सवाल यह है--एक तो यह कि यह जो सोचने का ढंग है कि व्यक्ति को अलग करें, विचार को अलग करें, यह सही नहीं है। गांधी के सब विचार अलग कर लें तो गांधी में बचता क्या है? कुछ भी नहीं बचता है। एक मोहनदास नाम का आदमी कीमत रखता है? उसे कुछ लेना-देना है? यह आदमी जो कुछ भी है, यह इकट्ठा जोड़ है। और गांधी के व्यक्तित्व को वह अलग कर ले तो विचारों में क्या बचता है? वैसे तो किताबों में बहुत विचार रखे हुए हैं, एक मुर्दा किताब रह जाती है। व्यक्ति और विचार, ऐसी कोई दो चीजें नहीं हैं। व्यक्ति ही विचार है, विचार ही व्यक्ति है। बस, अस्तित्व में तो इकट्ठे हैं, इसलिए हम एक से नहीं लड़ सकते। हालांकि वह भी चालाकी की जाती है कि नहीं, गांधी के व्यक्तित्व से तो हमें कोई मतलब नहीं है, मेरा तो इस विचार से विरोध है--पूरे विचार से नहीं, इस विचार से विरोध है। ये सब आत्मरक्षा के उपाय हैं।
दूसरी बात, कि सब अपनी परिस्थिति की उपज हैं। लेकिन वही परिस्थिति रावण भी पैदा करती है, वही परिस्थिति राम भी पैदा करती है। आज परिस्थिति तो दुनिया में एक है, लेकिन तीन अरब आदमी हैं। माना कि हम परिस्थिति की उपज होते हैं, लेकिन एकदम परिस्थिति की ही उपज नहीं होते, हम भी होते हैं; जो परिस्थिति को उपजाता रहता है वह भी होता है हमारे बीच। परिस्थिति भी हमारा चुनाव होगी, परिस्थिति को भी हम बदलते हैं, परिस्थिति को बदलने में हम अपने को भी बदलते हैं और निर्धारित होते हैं। इसलिए कोई व्यक्ति निपट परिस्थिति की उपज नहीं है।

तीसरी बात, जब महावीर के विरोध में कुछ कह रहा हूं या बुद्ध के या किसी के, तो असली सवाल महावीर या बुद्ध से नहीं है। अगर दुनिया में अनुयायी न रह जाएं तो वह बुद्ध, महावीर की बात ही बंद कर दें। जिस दिन दुनिया अच्छी होगी और अनुयायी नहीं होंगे, जिस दिन दुनिया समझदार होगी और अनुयायी नहीं होंगे; महावीर को लोग पढ़ेंगे, समझेंगे; बुद्ध को पढ़ेंगे, समझेंगे; लेकिन कोई किसी का अंधा अनुयायी न होगा, उस दिन मेरे जैसे आदमियों को बड़ी सुविधा हो जाएगी। हमें महावीर और बुद्ध की बात नहीं कहनी पड़ेगी, उनको बीच में लाने का कोई प्रयोजन नहीं रह जाता। उनसे आज भी कोई प्रयोजन नहीं है। आज भी प्रयोजन आपसे है--गांधीवादी से है, बुद्धवादी से है। यह जो वादी का चित्त

है, यह वादी का चित्त कहता है कि आपको जो कहना हो वह आप कहो, हमारे वाद को मत छेड़ो, हमारे गुरु को मत छेड़ो। हमने उसको गुरु समझ रखा है।
गुरु तो मर चुका, उसको हमारे छेड़ने की कोई जरूरत नहीं। हम तो गुरु मारने जा नहीं रहे, वह हमारे बिना ही मर गया। हम इसे छेड़ने जा रहे हैं।
लेकिन अगर इसका गुरु न छेड़ा जाए तो इसका आदमी नहीं छिड़ता। यह अपने दरवाजे पर गुरु को खड़ा किए हुए है। यह अपने दरवाजे पर झंडा लगाए हुए है गुरु का। यह कहता है, इस झंडे को नमस्कार! और यह इसका सुरक्षा कवच है। यह झंडा उतारना पड़ेगा, यह लड़ाई लड़नी पड़ेगी।
मेरी अपनी जो दृष्टि है, वह यह है कि व्यक्ति का आमूल जो रूपांतरण है,
उस आमूल रूपांतरण में उसकी विचार की प्रक्रिया से, उसके वाद के ढंग से, उसकी आइडियोलॉजी से, उसकी पकड़ से, वह जो क्लिंगिंग है उसकी, उसको तोड़ना पड़े। अगर हम किसी तरह अपरूट नहीं कर पाते हैं उसकी जड़ों से, तो हम उसे नई जड़ों पर नहीं ले जा सकते। उसका कोई उपाय नहीं है। और इसलिए मेरी बात समझने में हमेशा देर लगने वाली है। देर लगेगी स्वभावतः।

प्रश्नः एक छोटा सा प्रश्न हैः कहां पर उसका जजमेंट कैसे निकालना कि अगर आप कुछ कहते हैं तो मैं कुछ कहूं कि किसी ने भी कहा, तो एक ओर कह सकते हैं कि गांधीवादी, या तो विनोबावादी या समाजवादी, यह आत्मरक्षा का प्रबंध है। तो कोई आपके लिए भी ऐसा कह सकता है कि वह ओशो जी की आत्मश्लाघा है, प्रशंसा है!

मैं कहता नहीं कि हम जजमेंट लगाएं या हम अलग करें या उस चिंता में पड़ें। इसीलिए मैं कहता हूं कि अगर मैं किसी दिन किसी के पास पूछने जाऊं कि मुझे शांति चाहिए, मुझे आनंद चाहिए, मुझे सत्य चाहिए, तब यह सवाल उठता है। वह जो महावीरवादी है, अगर उसकी आत्मरक्षा का उपाय नहीं है और महावीर से उसने कुछ पा लिया है, तब उसकी खोज बंद हो जानी चाहिए। लेकिन मैं मानता हूं, वह है महावीरवादी, आया है मेरे पास। मैं उसके पास नहीं गया। यानी अगर मैं आत्मश्लाघा में जी रहा हूं तो यह मेरा सवाल है, इसमें किसी को क्या लेना- देना है। वह महावीरवादी आया मेरे पास...
अभी एक जैन मुनि मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं कि मैं आचार्य तुलसी का दीक्षित साधु हूं, ध्यान सिखाइए। मैं उनको कहता हूं, आचार्य तुलसी से क्या सीखा? दीक्षा किसलिए दी? और दीक्षा दे दी और ध्यान भी नहीं आया तो दीक्षित हुए कैसे?
अब यह बड़े मजे की बात है। सीधी तो बात यह है कि अगर महावीर से कुछ मिल गया है तो मेरे पास आने का कोई अर्थ नहीं है, बात खत्म हो गई। अगर गांधी से मिल गया है तो मजा करो, इसमें कुछ लेना-देना नहीं है। लेकिन मिला नहीं है, खोज जारी है। लेकिन फिर कहते हो, गांधी को पकड़े रहूंगा। नहीं, मैं गांधी को छुड़वाऊंगा। क्योंकि जिससे नहीं मिला है, कृपा करके उसको छोड़ो। मिल गया तो मैं नहीं कहता।
इसलिए मेरा जो निरंतर ख्याल है, वह इतना ही है कि नहीं मिलता जहां से, वहां भी हम पकड़े रहना चाहते हैं। फिर मुझसे भी यही चाहते हैं कि मैं भी उसमें थोड़ा एडीशन बन जाऊं। यानी मजेदार है मामला न! ये मुझसे भी कुछ सीख कर जाएं, समझ कर जाएं। वह भी गांधीवाद में एडीशन होने वाला है।
इसलिए अगर यह मेरी आत्मश्लाघा है--हो सकती है--तो यह मेरा नरक बनेगी।
और हमें सोच लेना चाहिए कि हम क्या बना रहे हैं उसको। और यह इतनी निपट वैयक्तिक है बात कि इसके लिए निर्णय का कोई उपाय भी नहीं है। इसलिए हो सकता है, मैं सिर्फ अपने को, सबको धोखा दे रहा हूं। लेकिन तब इसका दुख और पीड़ा मेरी है, इसका दुख और पीड़ा किसी की भी नहीं है। यानी इससे कुछ खो रहा हूं, जो मुझे गांधी के पकड़ने से मिल सकता था। तो मैं उसे खोने को तैयार हूं, उसमें कठिनाई नहीं है। मुझे महावीर को पकड़ने से जोशांति मिल सकती थी, वह मुझे लेने की इच्छा नहीं है। और अगर मैं अशांत हूं तो यह ज्यादा दिन आत्मश्लाघा चल नहीं सकती। क्योंकि अगर आप भी अपनी अशांति से परेशान होंगे, मैं नहीं होऊंगा? आप अपने दुख से पीड़ित होंगे, मैं अपने दुख से

पीड़ित नहीं हूं? आप तो अपना नरक मिटाने की कोशिश में लगे हैं, मैं अपना नरक बनाता रहूंगा? कितनी देर तक यह चलेगा? यह कैसे चल सकता है? यह असंभव है। तो निरंतर सवाल उठता ही है--जो लोग भी सोचते हैं--उठेगा ही। और मेरा मानना यह है कि इसके निर्णय की हमें जरूरत ही नहीं है। यह तो हमारे अपने सोचने की बात है। मैं जो पकड़े हुए हूं, उससे अगर मुझे कुछ मिलता हो तो बात खत्म हो गई। अगर नहीं मिल रहा है तो मैं कहता हूं कि कृपा कर इसे छोड़ो, इसके पहले कि कुछ और तुएहारी जिंदगी में उतर सके, तुम इसे छोड़ो। क्योंकि लड़ाई ही कष्टपूर्ण बनती है। और जब मैं देखता हूं कि आप छोड़ने को भी तैयार नहीं हैं तो मैं मानता हूं कि नये को पाने की सामर्थ्य आपकी नहीं हो सकती है। इसलिए मैं उधर से हिसाब ही छोड़ देता हूं। उचित यह है कि मैं एक जगह कुआं खोदने गया हूं, उसमें मैं कुदाली मार कर देख रहा हूं कि अगर पत्थर ही है सामने और कुदाली पत्थर पर ही पड़ती है, तो बेहतर है कि मैं उस जगह को छोड़ दूं, इतनी मेहनत क्यों करूं? अन्यथा जो आप कह रहे हैं, अगर उस तरह किया जाए, तो मुझे अकारण फिजूल लोगों पर मेहनत करनी पड़ेगी। ये वे लोग होंगे जो बदलना नहीं चाहते और जिनको मैं बदलने की कोशिश करता हूं।
अभी तो यह मुझे धीरे-धीरे साफ होता चला जाता है कि इस भांति सहज ही वे
ही लोग मेरे पास आ पाते हैं, जिनकी बदलने की आतुरता है, जिनमें बदलने का साहस है और जो कुछ भी छोड़ने को तैयार हैं। क्योंकि जो कुछ विचार ही छोड़ने को तैयार नहीं हैं, वे कुछ और छोड़ पाएंगे, यह बहुत मुश्किल मामला है। क्योंकि विचार से ज्यादा बेकार चीज कुछ और है नहीं, यानी सिर्फ शब्द ही शब्द हैं। उसको भी छोड़ने में जो आदमी घबड़ा रहा है, वह कुछ और सब्स्टेंस छोड़ पाएगा किसी दिन, इसकी आशा बांधनी बहुत मुश्किल है।
तो मेरे लिए वह परीक्षा का उपाय भी बन गया। यानी मैं तो मानता यह हूं
कि उसमें छंट जाते हैं लोग। वे ही लोग बच जाते हैं, जिनके साथ मेहनत करनी ठीक है। और मैं सब तरह से उनको छांटता ही रहता हूं, क्योंकि अकारण हर आदमी पर मेहनत करने की मेरी उत्सुकता नहीं है। क्योंकि आखिर मेरी सीमाएं हैं-- सबकी सीमाएं हैं। सारी दुनिया को मैं बदल नहीं सकता। सारी दुनिया को बदलने का ख्याल भी नहीं करना चाहिए। जितनी मेरी शक्ति है वह अधिकतम उपयोग में आ जाए, यह मेरा ख्याल है।
इस मामले को--यह एक अर्थ में सनातन है बहुत। और यह हममें उठ रहा है और सदा उठेगा। क्योंकि आसान मेरे लिए भी वही है। लाख आदमी सुन सकते हैं। अगर मैं उनके अहंकारों की किसी तरह से तृप्ति कर रहा हूं--या तृप्ति नहीं कर रहा हूं, सिर्फ चोट ही नहीं पहुंचा रहा हूं, इतनी ही तृप्ति कर रहा हूं--तो मुझे लाखों लोग सुन सकेंगे। लेकिन मैं लाखों लोगों को सुना कर भी क्या करूंगा? मैं दस आदमियों को सुनाना पसंद करूंगा, जो कि बदलने के लिए तैयार हैं। ये लाख आदमी सुन कर ताली बजा कर चले जाएंगे, इससे क्या होने वाला है। वह रोज चल रहा है। इधर मेरी अपनी समझ यह है, जैसे गांधी जी ने पूरा प्रयोग किया है वही करूं, जो यह सलाह मुझे मित्र देते हैं--गांधी जी ने पूरी जिंदगी वही किया और "अल्ला ईश्वर तेरे नाम" को भी इकट्ठा कर लिया और "गीता- कुरान" को भी इकट्ठा कर लिया। मुसलमान को भी बदल दें, हिंदू को भी बदल दें, ईसाई को भी बदल दें--सबको तृप्ति भी दे दें कि तुएहारी किताब में भी वही है, तुएहारी किताब में भी वही है; किसी के खिलाफ न बोले, सबके पक्ष में बोले--यह पूरी जिंदगी प्रयोग किया। मैं नहीं मानता हूं कि दस-बीस आदमी की जिंदगी भी बदल पाए। खुद की भी बदल पाए, यह भी मैं नहीं मानता हूं। क्योंकि मेरा ख्याल यह है कि अगर वे खुद को भी बदल पाते तो यह बात बहुत साफ हो जाती कि जो गोरखधंधा वे कर रहे हैं, यह संभव नहीं है।
ये महावीर और बुद्ध और क्राइस्ट नासमझी नहीं किए हैं। ठीक जो हो सकता
था वही किए हैं। नहीं तो बुद्ध भी कह सकते थे कि महावीर भी वही कहते हैं, उपनिषद भी वही कहते हैं, गीता भी वही कहती है, सभी वही कहते हैं, जो मैं कहता हूं। इसमें हर्ज क्या था कहना? यह बराबर कहा जा सकता था। लेकिन मैं मानता हूं कि बुद्ध कोशायद लाख, दो लाख लोग, दस लाख लोग उनको सुन लेते थे, लेकिन आपको नाम भी ख्याल में नहीं आता बुद्ध का। लेकिन कुछ लोगों को

उन्होंने बदला और बदले हुए लोग ही काम के हैं। हर आदमी काम पड़ता नहीं। उसे कुछ मतलब भी नहीं।
तो मेरी उत्सुकता किसी तरह के नेतृत्व में नहीं है और किसी तरह के परसुएशन में नहीं है। सीधी-साफ ऑनेस्ट बात होनी चाहिए। मुझे जो लगता है कि आप गलत हैं, तो मैं पूरी चोट से कहूंगा। और मैं मानता हूं कि जब अगर आप किसी तरह की आत्म-रक्षा के उपाय में नहीं गए तो आप समझ पाएंगे। अगर लगे हैं तो जल्दी आपसे मेरा छुटकारा होगा, ज्यादा समय आप मेरा जाया नहीं करेंगे। अभी यह देखें न क्या हुआ! मुझे जो गांधीवादी वर्षों से सुनता था, अब मैं मानता हूं, उसने मुझे कभी नहीं सुना। क्योंकि मुझे वह वर्षों से सुनता था, कैंपों में आता था, ध्यान के लिए बैठता था। मैं गांधी के खिलाफ बोला तो वह भाग गया। अब मैं सोचता हूं वह जो कई वर्ष मैंने उसके साथ मेहनत की, वह बेकार गई। मुझे गांधी के खिलाफ पहले ही बोल देना था। मेरे अपने तोड़ने के ढंग हैं, इसलिए मैं मानता हूं कि मेरा समय व्यर्थ गया। क्योंकि वह आदमी तो भाग गया। और वर्षों ध्यान करके और वर्षों मुझे सुन करके भी वह इतनी हिएमत न जुटा पाया कि इतनी आलोचना सह लेता, तो वह बेकार समय जाया हुआ। मैं और वर्षों उसको सुना सकता था, गांधी के खिलाफ भर नहीं बोलता तो। वह भी समय जाया होने वाला था।
इधर मेरी अपनी यह समझ है, मेरा मानना ऐसा है कि जो आदमी बदलने की तैयारी पर खड़ा है, वह आदमी सब तरह की चोट झेलने की तैयारी पर भी खड़ा होता है।

प्रश्नः जिनको आप मानते हैं कि गांधी की बात की तो वे लोग चले गए, वैसा
भी है--शायद कभी-कभी ऐसा होता है कि कोई चोट ऐसी लगती है, ठीक से अगर लग गई तो मैं चल सकता हूं। लेकिन अगर यह मुझे लग गई तो मुझे पांच-दस मिनट कुछ ठहरना पड़ेगा। तो ऐसा नहीं कि मैं छोड़ गया!

वे अगर लौट भी आएंगे तो मैं मानता हूं कि वे पहले से ज्यादा अच्छी हालत में होंगे, क्योंकि जब वे लौटेंगे तो वे इस बात को जान कर ही लौटेंगे कि मैं उन्हें चोट पहुंचा सकता हूं। अब मेरे बाबत वे साफ लौटेंगे तो भी हितकर होगा। वे दूसरे आदमी होकर लौटेंगे। अगर वे लौटते भी हैं--कुछ लौटे भी हैं बहुत से--तो अब वे एक बात साफ करके लौट रहे हैं कि मैं किसी तरह से उनको परसुएड करने में उत्सुक नहीं हूं। और मैं मानता हूं, अंत में यह बल मिलेगा। अगर मैं आपको किसी तरह परसुएड नहीं कर रहा और किसी तरह आपमें इस तरह की उत्सुकता नहीं ले रहा कि किसी भी हालत में आपसे राजी हो जाऊं, तो मैं मानता हूं, मेरे और आपके बीच ज्यादा सिंसिअर संबंध पैदा होंगे। क्योंकि एक तरह का धोखा ही है वह। अगर मैं गांधी के खिलाफ में हूं और नहीं बोल रहा, तो भी धोखा ही दे रहा हूं। अगर एक आदमी मेरे पास आता है और मैं कुरान के खिलाफ हूं और यह देखकर कि चूंकि वे मुसलमान हैं, इसलिए कुरान के खिलाफ नहीं बोलता, तो भी मैं धोखा दे रहा हूं। और उसके संबंध में कभी ऑनेस्ट नहीं हो सकता। मैं जो हूं, वह साफ है।
तो अब तो धीरे-धीरे ऐसी स्थिति बना लूंगा दो साल में कि मैं जैसा हूं वैसा साफ हूं; बुरा-भला, जैसा। आप आते हैं तो सब जानकर आते हैं, इसलिए आपके लौटने का उपाय कम हो जाएगा। अभी पीछे दिक्कत थी। लौट जाने का डर सदा बना रहता था। वह कठिनाई उसकी है। अगर वह मिटा लेता हूं बिल्कुल तो उसमें सीधा- साफ मामला हो जाएगा। आप जान कर आते हैं कि मैं ऐसा आदमी हूं। मेरे साथ दो घंटे अगर बैठना है तो यह सब संभावना है। तो मैं मानता हूं कि हम कुछ काम कर पाएंगे और संबंध हार्दिक हो पाता है। और नहीं तो नहीं हो पाता है। और छोटे- छोटे लोगों से नहीं, बड़े से बड़े लोगों के साथ ऐसी हालत है।
एक बड़े संत अपने आश्रम में रोज मेरी किताबों का पाठ करते थे वर्षों से
और बैठकर सारे शास्त्रों को समझाते थे। गांधी पर बीच में बोला तो वे सब किताबें वहां से हटा देते थे। किताबें वही हैं। उनमें कोई फर्क नहीं कर दिया है। मजा, मैं गांधी के विपरीत बोला, तो इसलिए सारा गड़बड़ हो गया। अब वह

मामला है कि अच्छा ही हुआ कि वह नाहक ही मेहनत कर रहे थे तो वे मेरी किताब नहीं समझ पाएंगे, वह भूल-चूक की बात चल रही थी।
तो कठिनाई तो है ही इसमें, लंबा भी वक्त लेती है यह बात। लेकिन थोड़ा सा
भी जो काम हो पाएगा, वह होगा। लगेगा कि काम नहीं हो पाएगा। फैलाव बहुत दिखेगा, कुछ हो नहीं पाएगा। उससे कुछ निकलेगा भी नहीं।

प्रश्नः व्यक्ति के ढंग से अगर देखा जाए तो आखिर में उद्देश्य क्या है? और समष्टि की दृष्टि से देखा जाए तो इनका मकसद क्या है? आप अल्टीमेटली कहां जाना चाहते हैं?

दोनों दृष्टि से एक ही बात है। व्यक्ति की दृष्टि से भी, समाज की दृष्टि से भी। व्यक्ति के हित में संभावना है आनंद पाने की। वह प्रकट नहीं हो पाएगी, नहीं हो पा रही है। कभी इक्के-दुक्के आदमी में प्रकट हुई है। बड़े व्यापक पैमाने पर वह प्रकट नहीं हुई है। और उसकी जो आनंद की संभावना प्रकट न हो तो वह जिस समाज को निर्मित करता है, वह भी दुख का ही समाज होता है। इसलिए मेरे लिए तो एक ही है दोनों के पीछे कि व्यक्ति अधिकतम आनंद को कैसे उपलब्ध हो। जिस रास्ते से मुझे लगता है कि आनंद है, जिस रास्ते से मुझे आनंद मिलता है, वह मैं आपसे कह देना चाहता हूं। अपेक्षा बिल्कुल नहीं है उसमें कि आप उसको मानें ही। मेरा कर्तव्य पूरा हो जाता है। मुझे अगर दिखाई पड़ रहा है कि जिस जगह मैं खड़ा हूं वहां रोशनी दिखाई पड़ती है। और अगर आप दो इंच हट जाएं अपनी जगह से तो इतनी रोशनी के मालिक हो सकते हैं। तो मैं दो इंच आपको हटाने की कोशिश कर रहा हूं। इसमें भी आप पर मेरी दया नहीं है। इसमें भी आनंद बंटने से मुझे आनंद मिलेगा, उतनी ही बात है। आप पर कोई करुणा नहीं, आपसे कुछ लेना-देना नहीं। इधर मेरा अनुभव ऐसा है कि आनंद मिले, तब तो आनंद मिलता ही है, जब हम उस आनंद को बांटें तो वह करोड़ गुना हो जाता है। तो मैं अपने आनंद को करोड़ गुना कर रहा हूं। जितने ज्यादा लोगों को वह मिल सकेगा, उतना ज्यादा मुझे मिल जाएगा। और अल्टीमेट का कोई ख्याल नहीं है। "अभी" पर मेरी सदा नजर है। यानी मेरा मानना है, अभी मिल सकता है, जरा से अंतर की जरूरत है; जहां आप खड़े हैं, वहां से शायद थोड़ा ही रुख बदलने की बात है और वह आपको मिल सकता है।
तो जितने लोग मेरे निकट आएंगे उनको मैं वह कहता चला जाऊंगा। अगर वे राजी होंगे तो उनको घुमा कर खड़ा करने के लिए तैयार हूं। मैं उनको घुमा कर उस तरफ रुख कर दूं, जहां रोशनी मुझे मालूम पड़ती है, जिस तरफ उन्होंने आदतवश ही कभी देखा नहीं है। इससे मुझे आनंद मिल रहा है। इससे आपको मिलेगा, नहीं मिलेगा, ऐसा मुझे पक्का नहीं है। मैं आपको घुमा भी पाऊंगा, यह भी जरूरी नहीं है। लेकिन मैंने आपको घुमाने की कोशिश की, उससे भी आनंदित हूं। और व्यक्ति बदले तो मेरे लिए समाज भी बदलता है।